सहारनपुर की काष्ठकला

अरशद कुरैशी

पुस्तिका सीरीज़-97

प्रकाशक :

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए,

लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 091-011-26177904, टेलीफैक्स : 091-011-26177904

ई-मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com

वेबसाइट : www.isd.net.in

© कॉपीराइट : इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी, 2022

प्रकाशन वर्ष : 2022

सर्वाधिकार सुरक्षित। प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इस शोध-पुस्तिका या इस शोध-पुस्तिका के किसी भी अंश को न तो पुनः प्रकाशित किया जा सकता है और न ही किसी भी अन्य तरीके से, किसी भी रूप में इसका व्यावसायिक उपयोग किया जा सकता है।

दो शब्द

सहारनपुर महानगर के 400 साल पुराने पारम्परिक हुनर लकड़ी पर नक़्क़ाशी की हस्तकला का यह अध्ययन इस कला के सुनहरे अतीत, मौजूदा विकट परिस्थितियों व भविष्य में गहराते संकट को ध्यान में रखकर किया गया है। जिससे कि वर्तमान में उन तमाम कलाओं पर आने वाले संकट की सूरत-ए-हाल का जायज़ा लिया जा सके, जिसमें वर्तमान औद्योगीकरण, मशीनों के बढ़ते इस्ते माल, उत्पादन पद्धति के तब्दील होते तरीक़ों ने दस्तकारी की उस पूरी परम्परा के अस्तित्व पर सवालिया निशान लगा दिया है।

यह अध्ययन यह पता लगाने की कोशिश है कि कलाएँ, दस्ती हुनर कैसे हमारी परम्पराओं, सामाजिक मान्यताओं, संस्कृति, तहज़ीब व सभ्यता के साथ पूरे जन-जीवन का हिस्सा होती हैं और जिनके संकटग्रस्त होने पर पूरी सभ्यता, तहज़ीब पर संकट गहराता है।

इसका विषय काष्ठकला के इतिहास को पुनर्जीवित करना, कलाएँ किस प्रकार सामाजिक जीवन में समुदायों के बीच जुड़ाव का काम करती हैं उन कारकों की तलाश करना, लुप्त होती हुई विरासत के तत्वों को चिन्हित करना व उनके बचाव के तौर-तरीक़ों को खोजने के साथ ही उस अद्भुत विरासत का दस्तावेज़ीकरण करना है जो 400 साल से भी अधिक समय तक इस शहर की साझी विरासत रही है।

तज़करा

यह 2007 की एक घटना का ज़िक्र है। देश के सम्मानित गाँधीवादी विचारक, वरिष्ठ पत्रकार व सामाजिक कार्यकर्ता भारत डोगरा, सहारनपुर आए हुए थे। उन्हें शहर की विश्वविख्यात काष्ठ कला में कार्यरत हुनरमन्द दस्तकारों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना था। हमारी संस्था 'तहरीक' उन दिनों शहर के युवा दस्तकारों के बीच सक्रिय थी। उनसे मेरा पुराना परिचय था, इसलिए, इस काम के लिए हम दोनों साथ हो लिए।

हमें सटीक जानकारी चाहिए थी। इस ललक में हम मज़दूरों की कच्ची बस्तियों, पुराने शहर के मौहल्लों व तंग गलियों में दुश्वारियों व समय से बे-परवाह उनके परिवारों तक पहुँच रहे थे, ताकि हालात का सही-सही जायज़ा लिया जा सके।

भटकते हुए हम पुराने शहर के बीचों-बीच स्थित एक सँकरे व भीड़-भाड़ वाले बाज़ार में कोयले की एक पुरानी सी दुकान पर पहुँचे। अब हम उस्ताद शकूर अंसारी की दुकान पर खड़े थे। जिस वक्त हम वहाँ पहुँचे 60-65 साल के वे बुजुर्ग फटे टाट के टुकड़े पर बैठे, पुराने वक्त की लोहे की दो पलड़ों वाली तराज़ू से कोयले का वज़न कर रहे थे। कुछ तो कोयले के वज़न, कुछ कमज़ोरी व बढ़ती उम्र के कारण उनके हाथों को काँपते हुए मैं देख रहा था। यह दिसम्बर की जिस्म को कँपकँपा देने वाली रात थी। 11 बजे के आस-पास का समय रहा होगा। बारिश ने मौसम में ठिठुरन पैदा

कर दी थी। हम भी हल्की बूँदाबाँदी में भीगते हुए दुकान पर पहुँचे थे। हमें बताया गया था कि शकूर अपने समय के मशहूर व सम्मानित उस्ताद रहे हैं। उनकी नक़्क़ाशी का काम बहुत ही नफ़ीस हुआ करता था। बाल संवारने की कंघी पर सधे हुए हाथ से उकेरी गई उनकी महीन नक़्क़ाशी की वजह से वह कंघी के उस्ताद के तौर पर बड़े मशहूर कारीगर थे। उनके बहुत से शागिर्द थे। शहर में उनको बहुत इज़्ज़त व मर्तबा हासिल था।

काम से फुर्सत मिलते ही उन्होंने हमारी तरफ़ देखा। परिचय हुआ, हमारी बात सुनकर शुरुआती झिझक के बाद शकूर सहज स्वभाव से बतियाने लगे थे। उनकी बातों का सार तो यही था कि औद्योगीकरण ने दस्तकारी जगत की पूरी संस्कृति व काम की प्रणाली को बदलकर रख दिया था। मशीनीकरण के बाद उस्तादों को काम मिलना बंद हो गया था। लेकिन बोलते हुए आवाज़ के उतार-चढ़ाव से उनका यह अहसास साफ़ झलक रहा था कि आर्थिक बदहाली के दुख से ज़्यादा उन्हें सम्मान व हुनर की क़द्र खो जाने की पीड़ा ने आहत किया था। गुज़रे हुए अपने मखमली वक्त की याद करते हुए दर्द की लहरें उनके चेहरे पर उभरती और उनके पूरे वजूद पर उदासी छा जाती।

अपनी पुरानी यादों में उभरते-डूबते हुए उस्ताद शकूर ने अपनी शादी का दिलचस्प क़िस्सा हमें सुनाया। उन्होंने बताया कि शादी की पहली रात उन्होंने अपनी दुल्हन इक़बाल बानो को अपने हाथ का शाहकार, बालों की कंघी का तोहफ़ा पेश किया था। इक़बाल बानो ने उसकी क़द्र भी बहुत की और 14-15 साल तक जब तक कि कंघी के दाँते घिस कर बेकार नहीं हो गए, इक़बाल बानो उसी कंघी से बाल सँवारती रही। शकूर इस जुड़ाव को आज भी महसूस करते थे। याद दिला दें कि 400 वर्ष पहले सहारनपुर में लकड़ी की नक़्क़ाशी का आरम्भ कंघी बनाने से ही शुरू हुआ था।

विषय पर आने से पहले यह तज़करा जरूरी लगा, इसलिए कि इस किस्सागोई से हो सकता है कि हमें कला जगत के इण्डस्ट्री और हुनरमन्द कारीगरों को मामूली फैक्ट्री मज़दूर में तब्दील होने की यात्रा को समझने में आसानी हो।

यह भी हो सकता है कि अन्त में यह अध्ययन आपको उस्ताद शकूर

का ज़िन्दगीनामा ही लगे। शकूर की मानसिक पीड़ा में जैसे हिन्दी के महान कवि 'अज्ञेय' की दो पंक्तियों का चित्रण था—

रोज़ सवेरे मैं थोड़ा सा अतीत में जी लेता हूँ।
क्योंकि रोज़ शाम को मैं थोड़ा भविष्य में मर जाता हूँ।।

हमारे हुनर, हमारी तहज़ीब

'जीवन की सम्पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही हुनर है।'

संगीत, शायरी, नृत्य नाटिकाएँ, धार्मिक व नैतिक विचार, चित्रकारी, रंगमंच, संगतराशी, वास्तु शिल्प और दस्तकारी को मनुष्य की सांस्कृतिक रचनाओं में शुमार किया जाता है। इन सब हवालों से देखने पर भारतीय समाज एक उन्नत सांस्कृतिक धरोहर वाला देश हमारे सामने आता है। कलात्मकता की दृष्टि से यह समाज प्राचीन काल से ही समृद्ध व उन्नत परम्पराओं से मालामाल देश रहा है।

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों, विभिन्न मान्यताओं व विभिन्न पूजा पद्धतियों वाले धर्मों व तहजीबों के रंगारंग संगम की धरती रही है। ब्राह्मणवाद, बौद्ध धर्म व जैन धर्म जैसे देशज दर्शनों ने इस धरती को स्थानीय परम्पराओं से माला-माल किया तो पारसी व ईसाई विदेशी धर्मों के साथ ही मध्यकाल में इस्लाम ने व तत्पश्चात सिख दर्शन ने भी इस धरती को अपना घर बनाया। बहुधर्मी, बहुसमाजी व विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से निर्मित इस तहज़ीब ने हमारी भाषा, संस्कृति, ललित कलाओं, शिल्प, चित्र कलाओं, लोक संगीत मेले, त्यौहारों, गायन शैली, कथा वाचन थियेटर, लोक संगीत को एक नायाब व अनोखा रंग दिया। हस्त शिल्प पर भी इस समन्वय का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। कलात्मकता से हमारा रिश्ता इतना ही प्राचीन है जितनी हमारी सभ्यता का इतिहास, रंगोली से लेकर दुल्हन के सोलह शृंगार, मेहन्दी के नित नये डिजाईन, शादी ब्याह में खेले जाने वाले उबटन,

दशहरे का रावण व मोहर्रम पर तैयार किया गया ताज़िया व मिट्टी के कच्चे घरों की दीवारों पर विभिन्न रंगों से महिलाओं द्वारा बनाए गए धार्मिक व सांस्कृतिक प्रतीकों के भित्ती चित्र, गाँव देहात में हाथ से बनाए गए मिट्टी के चूल्हों के रंग बिरंगे डिजाईन, बचपन में हाथों से बनाई गयी गुड़ियों व ससुराल जाने से पहले की तैयारी में दुल्हनों द्वारा बनाए गए तकियों, सिरहानों, रूमालों, पलंग की चादरों व दीवार के पर्दों पर हाथ से बनाए गए फूल, बेलबूटों के रंग बिरंगें डिजाईन व क्रोशिये से तैयार किए गए टी-पॉट कवर, तकिया कवर आदि की मिसाल कहती है कि कलात्मकता इस संस्कृति का अभिन्न अंग है। नानी-दादी के जमाने तक अनाज स्टोर की जाने वाली मिट्टी की कोठियाँ (एक प्रकार के स्टोर) सब यही दर्शाती हैं कि हमारी कलात्मकता, हमारी देशज दुनिया की परम्परागत विरासत है जो कि हमारी साझी विरासत का अमिट चिन्ह भी है। यह विरासत के प्रतीक चिन्ह किसी समुदाय के न होकर हर धर्म, जाति, नस्ल के विभेद से परे हर भारतीय समाज के जीवन की जीवन्त विरासत है। भगवान विश्वकर्मा की हमारी धार्मिक आस्था कलात्मकता के साथ-साथ परिकल्पना को ही दर्शाती है।

हमारी हस्त कलाएँ भी हमारे सांस्कृतिक परम्पराओं की निरंतर यात्रा हैं जिसने हमारी साझी विरासत की बुनियाद रख दी और साझा परम्पराओं को जन्म दिया।

रघुपति सहाय फ़िराक़ गोरखपुरी ने अपनी उर्दू ग़ज़ल के एक शेर में भारतीय सामाजिक संरचना का बयान ऐसे किया है कि—

सर ज़मीन ए हिंद पर अक़्वाम-ए-आलम के फ़िराक़
क़ाफ़िले बस्ते गए हिन्दोस्ताँ बनता गया।

यानि हिंदुस्तानी समाज कोई एक खास समुदाय नहीं बल्कि यह विभिन्न संस्कृतियों के मिलन का संसार है या यूँ कहिए कि दुनियाभर की विभिन्न कौमें अपनी-अपनी सांस्कृतिक धरोहरों के साथ जब एक जगह पर बस गईं तो एक ऐसी साझी संस्कृति ने जन्म लिया जिसके दामन में सबके लिए एक समान प्यार, सम्मान, अदब और इज़्ज़त की गुंजाइश थी। तहजीबों का यह अद्भुत मिलन, हिंदुस्तानियत जिसकी पहचान है, गंगा जमुनी तहज़ीब या साझी विरासत कहलाई।

सहारनपुर की पहचान—
लकड़ी पर नक़्क़ाशी का हुनर

उत्तर भारत में राजधानी दिल्ली की सीमा से 185 किलोमीटर की दूरी पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सहारनपुर जनपद स्थित है। गंगा जमुना के बीच बसावट के कारण यह इलाक़ा दो-आबा कहलाता है। इसलिए यह इलाक़ा साझी संस्कृति का केन्द्र भी है। हिमालय की गोद में बसने वाला राज्य उत्तराखंड, अपनी आर्थिक खुशहाली व विशिष्ट संस्कृति के लिए पहचाना जाने वाला हरियाणा व प्राकृतिक सौंदर्य से मालामाल व पारंपरिक जीवन शैली की पहचान हिमाचल प्रदेश का यह सीमांत नगर है। इसलिए पश्चिम उत्तर प्रदेश की स्थानीय संस्कृति के साथ इन तीनों प्रदेशों की संस्कृति की छाप यहाँ के जनजीवन पर देखी जा सकती है। पंजाब प्रांत की तरह इस इलाके में गन्ना, गेहूँ व चावल की खेती किसानी प्रचुर मात्रा में होती है। आम की बागवानी भी खूब होती है। आम और शीशम की लकड़ी पर नक्काशी की दस्तकारी इस शहर को दुनियाभर में पहचान देती है। दुनियाभर में यहाँ का निर्माण किया हुआ लकड़ी का सामान निर्यात होता है। इसके साथ ही कपड़े पर ज़रदोज़ी का हुनर व हौज़री का लघु उद्योग यहाँ की घरेलू सनत है। चमड़े के जूते व लेडीज़ चप्पलों का घरेलू उद्योग जनपद की खुशहाली में इज़ाफ़ा करते हैं। सहारनपुर के लोक जीवन पर भक्ति सूफी दर्शन का गहरा असर हैं। संत बाबा लालदास व सूफी हाजी शाह कमाल

की दोस्ती की कहानी यहाँ मशहूर हैं। इसलिए साझी संस्कृति की जड़ें यहाँ के जीवन में गहरे तक हैं। अट्ठारह सौ सतावन की बग़ावत जिसे ग़दर का नाम दिया गया उसकी यादगारें अभी भी शामली और मेरठ के इलाक़ों में तलाशी जा सकती हैं। इसलिए जहाँ खेती किसानी हो, दस्तकारी की परंपरा हो और जो जगह अपनी पारंपरिक जीवनशैली में मालामाल हो वहां सांस्कृतिक विरासत के सारे तत्व मौजूद रहते हैं।

सहारनपुर जनपद का कुल क्षेत्रफल 3860 वर्ग किमी. है। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह जनपद पाँच तहसीलों—सहारनपुर, देवबन्द, रामपुर मनिहारान, नकुड़ एवं बेहट में विभाजित है। यहाँ ग्यारह विकास खंड तथा 1607 गाँव है। इस जनपद में 11 नगर है।

सहारनपुर जनपद में हिंदू व मुस्लिम मुख्य धार्मिक समूह हैं। जनपद में हिंदू व मुस्लिम के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी—सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि कुल जनसंख्या के मात्र 1.18 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो ये मात्र 0.48 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्रों में 3.52 प्रतिशत है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदू व मुस्लिम के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी सहारनपुर जनपद के नगरों में ही केन्द्रित हैं। मुस्लिम भी गाँवों के बजाय नगरों में ही अधिक हैं। सहारनपुर जनपद के बाद देवबन्द मुस्लिम जनसँख्या का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

अध्ययन का विषय—दस्तकारी का इतिहास

सहारनपुर नगर की अंतर्राष्ट्रीय पहचान यहाँ की काष्ठ कला है। शीशम व आम की लकड़ी पर सधे हुए हाथों से महीन बेल बूटे व अनेक तरह के डिजाईन की गई कलाकृतियों का वैश्विक बाज़ार है।

लगभग 400 साल पुरानी इस दस्तकारी के इतिहास की यात्रा नगर के अस्तित्व व विकास की यात्रा के साथ-साथ चलती है। ऐतिहासिक दस्तावेज़ आईन-ए-अकबरी के अनुसार यह कला इस शहर के बसने से भी पहले यानी 1556 ईसवी से ही प्रचलन में आ गई थी। कहा जाता है कि या तो कश्मीर से यह कला यहाँ पहुँची या फिर मुल्तान के दस्तकार इसको अपने साथ लाए। पहले-पहल हुनरमंद कारीगरों ने बाल संवारने वाली लकड़ी की कंघी पर पीतल की भराई से बेल बूटे बनाए और फिर धीरे-धीरे घर के दरवाज़े, खिड़कियों व सजावट के अन्य सामानों पर यह दस्तकारी होने लगी। इस कला का विकास पुश्तैनी परपंरा से हुआ और यह हुनर एक नस्ल से दूसरी नस्ल को पहुँचा और यह यात्रा उस्ताद-शागिर्द की परंपरा में तब्दील हो गई।

औद्योगीकरण से पहले तक यह एक रचनात्मक प्रक्रिया थी कोई भी कलाकृति केवल एक रचनाकार की रचनात्मकता का शाहकार हुआ करती थी, जिसमें रचनाकार की रचनात्मकता का बोध हुआ करता था। विगत कई दशकों के वैश्विक औद्योगीकरण व आवारा पूँजी ने 'हुनर' की इस अभूतपूर्व विरासत को उद्योग में तब्दील कर दिया तो हुनर तकनीक में और रचनाकार 'औद्योगिक

श्रमिक' बनकर रह गया।

वर्तमान में यह उद्योग नगर में एक फलता फूलता घरेलू उद्योग है। जिसमें लगभग डेढ़ लाख हुनरमंद मज़दूर अपना पेट पालते हैं। इसमें बच्चे, बूढ़े, युवा व महिलाएं सभी दस्तकार शामिल हैं। नगर में करीब 400 कारखाने हैं और 150 निर्यातक यहाँ निर्मित सामान अमेरिका, जापान, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया व खाड़ी के अरब देशों को निर्यात करते हैं। यहाँ के निर्मित सामान का घरेलू बाज़ार भी खूब है। बढ़ती हुई मांग व औद्योगीकरण से इस कला के मजदूरों में खुशहाली बढ़ी है मगर कला के उद्योग में बदलने ने उस विरासत को लुप्त कर दिया जो इस कला की आत्मा हुआ करती थी। एक-एक कर सब पुराने उस्ताद गुज़रते गए तो पुश्तैनी हुनर भी मर गया और उस्ताद-शागिर्द की परंपरा भी समाप्त हो गई।

हुनर का सफ़र

कैसे तैयार होती है एक कलाकृति

वुडेन सिटी, सहारनपुर के पारम्परिक दस्तकार लकड़ी के ज्वैलरी बॉक्स, अगर बत्तीदान, धूपदान, कैन्डल स्टैण्ड, फोटो फ्रेम, कोस्टर सैट, लैटर रैक्स, स्टेशनरी होल्ड़र, पाईप स्टैण्ड, तम्बाकू जार आदि छोटी से छोटी कला कृतियों से लेकर गार्डन चैयर, टेबल, स्क्रीन, कॉर्नर स्टैंड, अलमारी, राऊंड टेबल जैसी कलाकृतियों के साथ डबल बैड, सोफ़ा सैट, गार्डन झूले आदि बड़े-बड़े आईटम तक तैयार करते हैं।

काष्ठ नगरी में लकड़ी पर नक़्क़ाशी से तैयार फ़र्नीचर व अन्य असंख्य कला कृतियाँ यू.एस.ए., सिंगापुर, इटली, कनाड़ा, स्पेन, फ्रांस, ब्रिटेन, ग्रीस, ऑस्ट्रेलिया जर्मनी, आदि विकसित देशों के साथ ही अनेक खाड़ी देशों को निर्यात की जाती हैं और देश के रेवन्यू को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाती हैं।

एक अन्दाज़ के अनुसार 400 साल पहले बाल संवारने की कंघी पर नक़्क़ाशी से शुरू होने वाली काष्ठ कला की दस्तकारी के इतिहास का सफ़र काफ़ी रोमाचंक है। पुश्तैनी हुनर से होते हुए उस्ताद, शागिर्द की परम्परा के दौर से गुज़रते हुए यह कला वर्तमान में इण्डस्ट्री के रूप में परिवर्तित होते हुए मशीनीकरण के आधुनिक दौर में तब्दील हो चुकी है।

सहारनपुर में तैयार एक कलाकृति का अपनी पूर्णता तक पहुँचने का सफ़र लकड़ी के बड़े लठ्ठों से शुरू होता है। लकड़ी के यह बड़े लट्ठे वन विभाग

व लकड़ी बेचने वाले किसानों से खरीदकर मंडी में आढ़ती के द्वारा बेचे जाते हैं। सहारनपुर देश में टिम्बर व्यवसाय में नार्थ इण्ड़िया की एक बड़ी मंडी है। जहाँ पर शीशम की लकड़ी का बड़ा बाज़ार है। शीशम के साथ ही आम की लकड़ी की खपत है। शीशम व आम की यह लकड़ी नेपाल, पंजाब, बिहार, गुजरात के साथ ही उत्तर प्रदेश के हरदोई, लखीमपुर, बहराईच, सीतापुर, गोण्डा से सहारनपुर की मंडियों को पहुँचती है। ठेकेदार, वन विभाग से ख़रीदारी कर आढ़तियों के हाथों मंडी तक पहुँचती है।

मंडी में आढ़ती से निर्यातक, कारखानेदार यह लकड़ी खरीदकर आरा मशीनों को पहुँचाते है। आरा मशीनों में लकड़ी के बड़े लट्ठों को आरा मशीन द्वारा चीरा जाता है, उसके बाद इन तख्तों को कारखानेदार अपनी ज़रूरत के अनुसार निशान लगाकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बदलता है।

लकड़ी के छोटे टुकड़ों से दस्तकारी की प्रक्रिया शुरू होती है। कार्विंग बॉक्स और फर्नीचर पर ज़्यादातर कार्विंग का काम किया जाता है। जाली, लकड़ी से तैयार स्क्रीन, मेज़ व अन्य कई तरह के कला कृतियों पर यह काम होता है। ब्रास के बारीक तार को टिकाई (नक्काशी के लिए बनाए गए डिजाईन) के सुन्दर डिजाईनों में तार को भरकर बहुत सुन्दर डिज़ाईन बनाए जाते हैं।

Inlay Work (भराई) बॉक्स, बुक रेक्स, पैन जार आदि छोटी कला कृतियों पर छोटी हथौडी से पीतल, मोती, प्लास्टिक आदि के डिजाईन तैयार किए जाते हैं। भराई के बाद तैयार कलाकृति को बफिंग मशीन से चमकाया जाता है। जिससे आईटम पर चमक आ जाती है। पॉलिश के बाद माल तैयार कर स्टॉक कर लिया जाता है।

बहुत से आईटम खराद से भी तैयार किए जाते हैं। तैयार माल को छोटे कारख़ानेदार निर्यातक को पहुँचाते है। निर्यातक द्वारा तैयार माल विदेशों को भेजा जाता है।

सरकारी भूमिका

भारतीय सरकार समय-समय पर अनेक स्कीमों के द्वारा उद्योग को बढ़ावा देने के लिए फैसले करती है। मार्किट डेवलपमेन्ट, सब्सिडी, एक्सपोर्ट एवार्ड, एक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल फॉर हैण्डीक्राफ्ट नई दिल्ली, दस्तकारी के लिए ट्रेनिंग कार्यक्रम चलाती है। समय-समय पर सेमिनार आयोजित करती है।

इसके साथ ही क्राफ्ट मेले आयोजित करती है। निर्यातकों के लिए क्राफ्ट मेले आयोजित कर निर्यातकों को विदेशी ग्राहकों तक पहुँच बनाने का कार्य करती है। दस्तकारों को सीधा बाज़ार उपलब्ध कराने के लिए 'दस्तकार मेलों' का आयोजन भी कराती है। बुर्जुग दस्तकारों की मदद के लिए वित्तीय योजनाएँ भी समय-समय पर लायी जाती हैं।

क्राफ्ट डेवलपमेन्ट सोसायटी के अध्यक्ष व काष्ठकला में पुश्तैनी सिलसिले से जुड़े नगर के बड़े व्यवसायी व निर्यातक हाजी औसाफ गुड्डू ने बताया कि जब तक यह व्यवसाय केवल हस्तकला था तब तक दस्तकार हुनरमन्द समुदाय कुनबे की तरह रहते थे। उनका आचार व्यवहार एक दूसरे के प्रति परिवार के सदस्य की तरह दुख-सुख में साथ देने वाले इन्सान की तरह रहता था। यह एक संस्कृति थी, पुरखों से हस्तांतरित यह रवायत औद्योगीकरण के बाद खत्म हो गई है अब लोगों के पास न तो समय है कि एक दूसरे के लिए समय निकालें और न ही वह आचरण बचा रह गया है।

वर्तमान में मज़दूरों की आर्थिक स्थिति पर चर्चा करते हुए उनका कहना था कि उपनिवेशीकरण के बाद विदेशों से निर्यात बढ़ा है तो एक सामान्य मज़दूर की आय में वृद्धि भी हुई है।

बाल मज़दूरी के विषय पर उनसे बातचीत पर चौंकाने वाला जवाब मिला उनका कहना था कि नक़्क़ाशी करने के लिए कोमल हाथों की ज़रूरत होती है। इस कला को सीखने के लिए आदर्श आयु 10 से 12 वर्ष तक है। इसलिए होना यह चाहिए कि इसी उम्र से बच्चे को कला का ज्ञान दिया जाए। उनका सुझाव था कि सरकार को हुनरमन्द परिवारों के बच्चों के लिए वोकेशनल शिक्षा केन्द्रों की शुरुआत करनी चाहिए। जिससे इन परिवारों के बच्चे आधुनिक शिक्षा के साथ अपनी पुश्तैनी कला में भी निपुण हो सकें।

महिलाओं को हुनर क्यों नहीं सिखाया जाता, इस पर उनका जवाब विरोधाभासी था। उनका कहना था महिलाएँ केवल अपनी आर्थिक बदहाली से परेशान होकर व्यवसाय में कार्यरत हैं। यह पूछने पर कि जो कारक 10 से 12 वर्ष के बाल मज़दूर पर लागू होते हैं वह एक महिला पर भी लागू होते हैं तो इस पर उनका कहना था कि सरकार यदि ऐसी कोई योजना शुरू करती है जिसमें महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाए तो हम उसका स्वागत करेंगे। गुलशन टिम्बर

के मालिक विगत 30 से 35 वर्षों से टिम्बर आढ़त चलाने वाले फुरकान अली ने बताया कि इस नगर में 60, 65 आढ़तें हैं। सहारनपुर में शाहजहाँपुर, बलरामपुर, बहराईच, गोरखपुर आदि शहरों के साथ ही पंजाब के कई शहरों से लकड़ी के लट्ठे आते हैं, यहाँ आढ़त में बोली (नीलामी) की जाती है। बड़े व मझोले कारखानेदार इस लकड़ी को खरीदकर अपनी ज़रूरत के अनुसार आईटम तैयार करते हैं।

नेशनल हैण्डीक्राफ्ट के मालिक इरफ़ान ने बताया कि हमारे पूर्वजों ने यह व्यवसाय उस समय शुरू किया था जब यह केवल हुनर था, शहर से निर्यात नाममात्र था। आज यह उद्योग शहर की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। हजारों की संख्या में दस्तकार इस व्यवसाय से अपनी गुज़र-बसर करते हैं। इसके अलावा छोटे-छोटे कारखानों के अलावा आज यह गाँव तक पहुँच चुका है, शहर में अनेक परिवार काम अपने घर ले जाकर करते हैं। महिलाओं व बच्चों के साथ मिलकर पूरा परिवार काम में जुटता है। इससे परिवार की आर्थिक आय में बढोत्तरी होती है। उन्होंने कहा कि इसका सामाजिक पहलू यह भी है कि यह परिवार में संयुक्त रहने की परिपाटी को बढ़ावा देता है।

व्यवसाय में मज़दूरी करने वाले युवा कारीगरों ने बताया कि एक सामान्य कारीगर एक दिन में लगभग 500 रुपये तक की कमाई अर्जित करता है। लेकिन कुशल कारीगर चाहे तो अपने हुनर के बूते 1000 रुपये की कमाई तक कर सकता है।

महिला श्रमिकों का कहना था कि महिलाएँ क्योंकि कुशल कारीगर नहीं हैं बल्कि पॉलिश या पैकिंग का काम करती हैं इसलिए उनको मज़दूरी पुरूष कारीगर से कम मिलती है।

युवा निर्यातक व बड़े कारखानेदार मैसर्स फादर एण्ड मदर व स्टैंडर्ड आर्ट इण्डस्ट्री के अब्दुल ग़फ़ूर की तीसरी पीढ़ी के सदस्य हैं और शहर के बड़े व पुराने व्यवसायियों में उनका स्थान है। उनको भी यह व्यवसाय पुश्तैनी तौर पर हस्तांतरित हुआ है।

युसुफ़ के अनुसार उपनिवेशीकरण के बाद वैश्विक बाज़ार व्यवस्था के चलते काष्ठ कला का तेज़ी से औद्योगीकरण हुआ व आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल बढ़ा। वैश्वीकरण के बाद विदेशों से ऑर्डर बढ़े जिससे शहर के निर्यात

को बढ़ावा मिला तो मज़दूरी भी बढ़ी। इससे इस उद्योग ने कारीगरों को आर्थिक लाभ की स्थिति में पहुँचा दिया।

उनका कहना था कि निर्यात के साथ ही 1990 के बाद हमारे घरेलू बाज़ार में भी सहारनपुर की निर्मित सामान की माँग बढ़ने लगी थी। उनका मानना था कि 1990 के बाद भारतीय उपभोक्ता की खरीदारी की ताकत बढ़ी और पूरे देश में हमारे यहाँ तैयार माल की माँग बढ़ने लगी। उनका कहना था कि जैसे उपभोक्ता ने सोना खरीदा तो उसे सामान्य बॉक्स में रखने के बजाय उसने आभूषणों को एक सुन्दर व डिजाईन वाले बॉक्स में रखना पसन्द किया और इस तरह हमारे तैयार किये गए ज्वैलरी बॉक्स को पसंद किया।

उन्होंने बताया कि एक तो इसी समयकाल में हमारे दस्तकार स्वयं फर्नीचर व दूसरे आईटम तैयार कर भारत के सभी बड़े नगरों में कला प्रदर्शनियाँ आयोजित करने लगे और नया बाज़ार खोज निकाला। यह क्राफ्ट मेले वर्तमान में भी आयोजित किये जा रहे है।

वैश्विक स्तर पर चीन से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना विगत 30-35 वर्षों से जारी है। इसके लिए वह भारत सरकारी की उद्योग के प्रति उदासीनता व नीतियों को उत्तरदायी ठहराते हैं। जिससे वैश्विक बाज़ार में चीन ने अपना माल सस्ते दामों पर बेचकर दुनिया की मण्डियों में अपना माल भर दिया। जबकि भारतीय उत्पादों पर लागत अधिक होने के कारण हमारे प्रॉडक्ट पर अधिक लागत आने लगी। इसलिए दुनिया के बाज़ार में चीन से पिछड़ते चले गए। उन्होंने बताया कि वर्तमान में हमारी स्थिति बेहतर है लेकिन इसका कारण कोविड-19 है। कोरोना की वजह से चीन का माल बाज़ार में नहीं पहुँच रहा इसलिए हमारे निर्यातकों के पास आर्डर है। लेकिन इसको वह अस्थायी मानते है।

चीन से प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए वह सरकार की नीतियों की नाकामी को वजह मानते है। वह सरकारी नीतियों में परिवर्तन चाहते हैं इस हेतु कुछ माँगें उन्होंने रखीं। उन्होंने कहा कि—

- हमारे उत्पाद जीएसटी मुक्त होने चाहिए क्योंकि सहारनपुर के माल पर कभी भी सेल टैक्स नहीं रहा है।
- बैंडसा मशीनों (लकड़ी काटने की मशीन) का लाईसेंस फ्री होना

चाहिए। उनका कहना था कि यह लाईसेंस प्राप्त करना एक बहुत ही पेचीदा प्रोसेस है।

- ई-कॉमर्स प्लटेफॉर्म होना चाहिए। जिससे कि मार्केट में पहुँच आसानी से हो सके।
- उद्योग को ग्रांट व सब्सिडी की सुविधा मिलनी चाहिए ।
- मिडिएटर व्यवस्था समाप्त की जाए जिससे कि बायर तक प्रोडक्ट सस्ता पहुँचे व पहुँच सीधी बनने का रास्ता साफ हो।
- सहारनपुर में इण्टरनेशनल एअरपोर्ट बनाया जाये जिससे कि विदेश से आने वाले ग्राहकों को मार्केट तक पहुँचने में सुविधा हो सके।
- सरकार अपने खर्चे से विदेशों में निर्यात के लिए समय-समय पर प्रदर्शनियों का आयोजन करे। जिससे स्थानीय निर्यातक अपने प्रोडक्ट का प्रदर्शन कर सकें व ऑर्डर हासिल कर सकें।

चीन से प्रतिस्पर्धा में अपने प्रोडक्ट्स की विशेषता बताते हुए उन्होंने बताया कि चीन में प्रोडक्ट्स मशीन द्वारा तैयार होता है जबकि हमारे यहाँ के सभी प्रोडक्टस में दस्तकारी ज़रूर होती है। इसलिए विश्व बाज़ार में कलात्मकता को पंसद करने वाले लोग हमारे यहाँ निर्मित कलाकृतियों की तरफ आकर्षित होते हैं। यही विशेषता हमारे प्रोडक्ट्स को चीन से अलग करती है।

उनका मानना है कि सहारनपुर काष्ठ कला का एक बड़ा लघु उद्योग होने के साथ एक पारम्परिक दस्तकारी की विरासत की भी धरती है।

वर्तमान में यहाँ लगभग 300 निर्यातक, 1,000 सप्लायर, 400 ट्रेडर्स हैं। उनका कहना था कि यह ऐसा उद्योग है जिससे ढाई लाख लोग सीधे तौर पर जुड़कर अपना परिवार चलाते हैं। यह उद्योग लगभग 50 हजार परिवारों को पेट पालने के साधन मुहैय्या करता है।

सरकार ऐसी नीतियों का निर्माण भी करे जिससे कि औद्योगीकरण के कारण यहाँ की मरती हुई कला को बचाया जा सके।

उतार-चढ़ाव की यात्रा

सहारनपुर की परम्परागत काष्ठ कला ने अपना सफ़र छोटी-छोटी कलात्मक कृतियों से शुरू किया था—कंघी बनाने, रहल (धार्मिक पुस्तक रखने का स्टैण्ड), बुक रैक्स, स्क्रीन (लकड़ी के पार्टिशन) व छोटी नक़्क़ाशी वाला

सेंटर टेबल से होते हुए वर्तमान में लकड़ी के नक़्क़ाशी किए हुए फर्नीचर व बड़े इमारती सामान वर्तमान में यहाँ तैयार होता है। सदियों पुराने इस लम्बे सफ़र में इस उद्योग ने अनेक उतार चढ़ाव का सामना किया है। इस पारम्परिक शिल्प के सामने पहला बड़ा संकट 1975 में आया। 1975 तक यह केवल एक स्थानीय बाज़ार होने के साथ यूएसए से होने वाले निर्यात पर निर्भर था। 1975 में भारतीय सरकार व यूएसए के बीच नीतियों के मतभेद के चलते अमेरिका से निर्यात बाधित हुआ। निर्यात एकदम बन्द हुआ तो एक के बाद एक कारखाने बन्द होने लगे, और कारीगर काम के अभाव में भूखों मरने लगे। यह वह समय काल था जब छोटे कारखानेदार तक जीवन गुज़र-बसर करने के लिए दूसरे छोटे-मोटे काम धन्धों में जाने लगे। दस्तकार मज़दूर को तो इस संकट में ठेला खींचने, साईकिल रिक्शा चलाना, सब्ज़ी की फेरी करना, रेहड़ी पर चावल बेचने जैसे काम करने पर मजबूर कर दिया। यही समय था जब पहली बार नगर के दस्तकार विस्थापन पर मजबूर हुए, शहर के अनेक कुशल कारीगर अपना घरद्वार छोड़कर रोज़ी-रोटी की तलाश में, मुम्बई, जयपुर, जोधपुर, हैदराबाद, दिल्ली, हरियाणा व पंजाब जैसे सूबों की तरफ़ प्रस्थान कर गए।

समय के साथ धीरे-धीरे हालात पटरी पर लौटे तो अनेक विस्थापित दस्तकारों ने घरों को वापस लौटना शुरू किया। यह विस्थापन एक ओर जहाँ मजदूरों को उनकी जड़ों से उखाड़ने वाला था तो इसका दूसरा पहलू विस्थापित मजदूरों के लिए वरदान भी साबित हुआ। घर वापसी करने वाले हुनरमन्द अपने साथ बहुत से अनुभव व काम के तरीकों में नयापन लेकर लौटे। घर से जाते समय तक सहारनपुर का कारीगर केवल रहल, स्क्रीन, पलंग के तकिए व छोटे-छोटे बॉक्स बनाने वाला कारीगर था। वापस लौटा तो वह नक़्क़ाशी वाला फर्नीचर, कनसोल, मेज़, दरवाज़ों पर नक़्क़ाशी आदि अनेक विभिन्न तरह के सामान बनाने में माहिर था। अपनी कला व हुनर को इस्तेमाल में लाते हुए इन्हीं हुनरमन्द कारीगरों ने यह सब प्रोडक्ट अपने शहर में बनाने शुरू किए व बड़े शहरों के दुकानदारों को सप्लाई शुरू की। धीरे-धीरे विदेशों से निर्यात भी शुरू हुआ तो जीवन पटरी पर आने लगा।

उद्योग में दूसरा बड़ा संकट 1990 में आया। जब माननीय मायावती के

मुख्यमंत्रित्व में सरकार ने नगर की आरा मशीनों को प्रतिबन्धित कर दिया। आरा मशीनों के बन्द होते ही उत्पाद बनाने की पूरी प्रक्रिया ठप्प होकर रह गयी। उत्पाद बनाने के लिए बड़े तख्तों को चीरकर छोटे-छोटे सलाईस में काटा जाता है, लकड़ी चीरना बन्द हुआ तो पूरा काम बन्द हो गया। नगर में केवल गिनी-चुनी ऐसी मशीनें थीं जिनके पास लाईसेंस था। लाईसेंस लेने की प्रक्रिया आसान न थी। इसलिए उद्योग के सामने संकट खड़ा हो गया। इस बार फिर दस्तकारों का विस्थापन शुरू हुआ।

इन विस्थापनों ने दस्तकारों के सामने खुशहाली का एक और दरवाज़ा खोला, हुनरमंद कारीगर जिन स्थानों पर गए उनका हुनर और कला भी उनके साथ पहुँची और इस तरह नक़्क़ाशी के हुनर का विस्तार हुआ। स्थानीय दस्तकारी जो केवल सहारनपुर तक सीमित थी आज वह मुम्बई, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, पंजाब के होशियारपुर जैसे अनेक शहरों व मध्य प्रदेश, केरल आदि सूबों में भी यह कला देखने को मिल जाएगी। इन शहरों व राज्यों में वर्तमान में सहारनपुर से विस्थापित हज़ारों की संख्या में नक़्क़ाशी के हुनरमन्द कारीगर कार्यरत हैं। विस्थापन ने स्थानीय हुनरमंद दस्तकारों के कौशल को बढ़ाने में भी योगदान किया। विस्थापन के बाद घर लौटे तो उनके पास ढेर सारे अनुभव थे यहाँ से इनके कौशल के विस्तार की यात्रा शुरू होती है। स्थानीय कारीगर पहले केवल कंघी, मेज़, मुसहरी पलंग के तकिये बनाने तक सीमित था, अब यह प्रतिभावान हुनरमंद फर्नीचर पर नक़्क़ाशी व अनेक कलाकृतियाँ बनाने में निपुण थे। यहीं से स्थानीय मजदूरों की आर्थिक सम्पन्नता की यात्रा शुरू भी हुई और वह केवल एक मज़दूर से छोटे-छोटे कारखानेदार व क्राफ्ट बाज़ारों के माध्यम से छोटे-छोटे व्यवसायी के रूप में उभरने लगे।

वर्तमान में भी शहर का उद्योग एक संकट का सामना कर रहा है। सहारनपुर शीशम लकड़ी पर नक़्क़ाशी की हुनर के लिए प्रख्यात है। यहाँ के हुनर की यही विशेषता है। वर्तमान हालत यह है कि अनेक देशों ने शीशम लकड़ी से निर्मित उत्पाद लेने पर प्रतिबंध लगा दिया है। जिसके कारण शीशम प्रोडक्ट का निर्यात बुरी तरह प्रभावित है। शीशम से निर्मित उत्पाद केवल घरेलू बाज़ार के लिए तैयार किया जा रहा है।

लकड़ी पर नक़्क़ाशी करने वाले हुनरमन्द कारीगरों के साथ यह कला

विदेशों तक पहुँची, वैश्विक बाज़ार की व्यवस्था के बाद स्थानीय कारीगर रोज़ी–रोटी की तलाश में खाड़ी देशों में पहुँचे, आज भी अनेक अरब देशों में असंख्य कारीगर कार्यरत हैं। इस तरह इस कला का विस्तार देश की सीमा को पार कर गया।

नज़रिया

कला की महत्ता व सांस्कृतिक विरासत के साथ इसके अन्तर्निहित सम्बन्धों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन सामाजिक धरातल पर हमारी यह कला नकारात्मक विरासत के मूल्यों को हमारे सामने ला खड़ा करती है। प्राय: मानवीय मूल्यों के आधार पर बाल श्रम को सामाजिक बुराई माना गया है जबकि हमारी सामाजिक व्यवस्था में बचपन से ही बालक खेती व घरेलू उत्पादन में हाथ बंटाना शुरू कर देता है। जिसे संस्कारों के रूप में मान्यता भी प्राप्त है।

वर्तमान में औद्योगीकरण व गरीबी भी बाल श्रम के दो मुख्य कारण हैं। कमज़ोर आर्थिक स्थिति के परिवार के बच्चे बाल श्रमिक बन जाते है। प्राय: ये बच्चे कुपोषण तथा बीमारियों के शिकार होते हैं और काम के स्थान पर यौन हिंसा का भी शिकार होते हैं। श्रमिक महिलाएँ भी ऐसी ही कष्टदायक व विकट परिस्थितियों का सामना करती हैं।

विगत दशकों में बाल–श्रमिकों पर अनेक अध्ययन सामने आए हैं। राष्ट्रीय जनगणना के अनुसार 1981 में एक करोड़ छत्तीस लाख बच्चे मज़दूरी में लगे हुए थे। 1983 में नेशनल सेम्पल सर्वे में इनकी संख्या एक सौ चौहत्तर लाख बताई गई है। एक अध्ययन के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या चार करोड़ चालीस लाख आँकी गई थी। सच्चाई यह है कि बाल श्रमिकों की वास्तविक संख्या की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि बाल श्रमिकों की समस्या देश में विकराल रूप में हमारे सामने है।

हमारी सामाजिक संरचना का यह सत्य है कि हमारे कलाकारों का जाति विशेष से सम्बन्ध होता है। इन्हीं जातियों के बच्चों को अबोध अवस्था से ही अपना पुश्तैनी हुनर सिखाया जाता है। इसके पीछे अधिकतर कला से सम्बन्ध रखने वाली जातियों की गरीबी व इन जातियों की निम्नवर्गीय सामाजिक हैसियत होती है।

लकड़ी उद्योग का परिदृश्य भी इस सामाजिक संरचना से अलग नहीं है। यहाँ भी उद्योग में कार्यरत उत्पादन प्रक्रिया में अधिकतर मुस्लिम समुदाय है। अन्य धार्मिक समुदायों की संख्या हुनरमंद कारीगरों में बहुत ही कम है। उत्पादन प्रक्रिया में मुस्लिम पसमांदा (पिछड़ा व अति पिछड़ा वर्ग) बिरादरियों के दस्तकार ही उद्योग में कार्यरत हैं। भारतीय मुस्लिम समाज की बनावट पूरी तरह से भारतीय सामाजिक संरचना की तरह ही वर्गों में विभाजित है। इसी सामाजिक वर्गीकरण में सैय्यद व शेख जातियाँ वर्गों के आधार पर उच्च जातियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। यह समाज का उच्च वर्ग है जो कि धार्मिक नेतृत्व व सियासी कयादत करता है व उच्च सरकारी नौकरियों में जाता है। सबसे निचली श्रेणी में 'अरज़ाल' जातियाँ नाई, धोबी आदि वर्ग जैसे निम्न स्तरीय पेशा करने वाली जातियाँ मानी जाती हैं। इस श्रेणी में नीचे से दूसरे पायदान की 'अजलाफ़' जातियाँ हैं जोकि दस्तकार जातियाँ हैं। काष्ठ कला में 'अजलाफ़' जातियों के लोग ही कार्यरत हैं। एक मान्यता यह भी है कि शताब्दियों पहले 'सैफ़ी' (एक दस्तकार समुदाय मुल्तानी लौहार) लोग ही मुलतान से इस हुनर को अपने साथ शहर में लेकर आए। और इन्हीं लोगों ने इस हुनर को आगे बढ़ाया।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य भी यही है कि उद्योग में सबसे अधिक मलिक (तेली), अन्सारी (जुलाहा) व अन्य मुस्लिम पसमाँदा जातियों के लोग ही उत्पादन प्रक्रिया में कार्यरत हैं। लकड़ी पर नक्काशी की कला बिखेरने वाले दस्तकार इन्हीं जातियों से सम्बन्ध रखते हैं।

मुलाक़ात

उस्ताद हाजी मोहम्मद अली अन्सारी

यादों के झरोखे से

निर्यातक, सप्लायर्स, आढ़ती, कारखानेदार व दस्तकारी उद्योग से जुड़े अन्य लोगों से चर्चा के बाद मैं ऐसे उस्ताद की तलाश में था जोकि इस व्यवसाय के अतीत, कला की महत्ता और उन संस्कारों से रूबरू करा दे, जोकि इस कला जगत के अतीत को अपने यादों के दामन में संजोए हुए है। इसके लिए मैंने ऐसे लोगों से मिलना शुरू किया जो ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि से आते हैं जिनका इस कला से पुश्तैनी रिश्ता रहा है। एक दोस्त के माध्यम से मेरी मुलाक़ात हाजी इरशाद काला से हुई, उन्होंने उस्ताद हाजी मोहम्मद अली अन्सारी से मेरी मुलाक़ात करा दी। इस हिदायत के साथ कि उस्ताद बढ़ती उम्र के कारण थोड़ा तुनक मिज़ाज हो गए है, किसी बात पर रूठ भी सकते हैं, बिगड़ भी सकते हैं, भावुक भी हो सकते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर बात करना। उस्ताद उस दिन तो बात नहीं कर सके। मैंने फिर कभी आने की बात कही तो मान गए।

सप्ताह के अन्तराल के बाद जुमा (शुक्रवार) के दिन जिस वक्त मैं कारखाने पहुँचा छुट्टी का दिन होने के कारण उस्ताद कारखाने पर अकेले थे और अपने पालतू बकरे के पास बैठे दिसम्बर की धूप सेंक रहे थे। खुशगवार

मूड देखकर मैंने बातचीत का सिलसिला शुरू किया। कारखाने में दाखिल होते ही मुझे एक बहुत ही सुन्दर कलाकृति ने आकर्षित किया, यह शीशम की लकड़ी से बनी, टाईम घड़ी हाथ में लिए हुए एक महिला की प्रतिमा थी। बातचीत का सिलसिला इस प्रतिमा की तारीफ़ से शुरू हुआ। उस्ताद ने उत्सुकता के भाव में बताया कि यह दो शाहकार थे जो मैंने खुद तैयार किए थे। एक प्रतिमा एक विदेशी के हाथों बेच दी थी दूसरी ये मेरे पास है। इसको मैं कभी नहीं बेचूँगा।

बात की डोर के सिलसिले को उस्ताद ने बचपन की यादों से पकड़ते हुए कहना शुरू किया कि अम्मी दोपहर का खाना पहले मुझे परोसती थी फिर एक बर्तन में खाना देकर वो अब्बा (पिताजी) के लिए डिब्बा तैयार करती थी। मैं खाना लेकर दुकान पर पहुँच जाता और शाम तक अब्बा के साथ वक्त गुज़ारता था। उस वक्त न तो इतनी काम की मारामारी थी न ही शहर की आबादी ज़्यादा थी। जब मैं खाना लेकर निकलता पूरा रास्ता ही मुझे सुनसान मिलता। इक्का-दुक्का लोगों की आवाजाही रहती थी। वाहन तो थे ही नहीं, कोई साईकिल ही कभी-कभार पास से गुज़रती थी।

नगर में दस्तकारी की बात निकली तो कहने लगे मैंने अपने अब्बा को यह कहते हुए सुना है कि हमने बालों को संवारने की कंघी, गोल छोटी नक़्क़ाशीदार सेन्ट्रल टेबल व पलंग के पीछे लगने वाला नक़्क़ाशी व जालीदार तकिया बनाने से काम सीखा, यही उत्पाद उस समय तैयार किए जाते थे। इसके बाद पार्टिशन जिसे आम बोलचाल में पर्दा बोला जाता है, बनने लगा था। यह सभी कलाकृतियाँ पूरी तरह हस्तशिल्प हुआ करती, यहाँ तक की पेड़ भी हाथ की आरी से काटकर लाते थे। फिर एक बडे हाथ के आरे से ही दो व्यक्ति उसको छोटे आकार का बनाते, तख़्ते बनाते और छोटे-छोटे पीस बनाकर उत्पाद तैयार कर लिया करते थे। तैयार माल का पूरा बाज़ार स्थानीय था और नगर के एक खास बाज़ार 'मण्डी' में गिनी चुनी दुकानें थीं दस्तकार अपने तैयार उत्पाद इन दुकानदारों को ही सप्लाई करते थे। स्थानीय लोग शादी ब्याह पर पलंग के तकिये, कंघी, रहल (बुक स्टैंड) वहीं से ख़रीदा करते थे।

विशेष उत्पादों की माँग भी बाद में आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ने लगी। लेकिन इस स्थानीय हुनर को बढ़ाने में मल्टी नेशनल कंपनी आईटीसी का

बड़ा सहयोग रहा है। आईटीसी सहारनपुर ब्रांच से सेवा निवृत्त मज़दूर यूनियन के कोषाध्यक्ष श्री मतलूब अहमद ने बताया कि सहारनपुर में आईटीसी कंपनी सन् 1924 में छोटे स्तर से शुरू हुई। प्रारंभ में इंपीरियल कंपनी के नाम से कंपनी ने एक तंबाकू के गोदाम का निर्माण करवाया और कार्य शुरू किया। सन् 1936 में कंपनी ने प्रोडक्शन शुरू कर बाज़ार में सिगरेट का बाज़ार बनाना शुरू किया। आज़ादी के बाद अपनी स्थापना के 50 साल बाद कंपनी ने अपना नाम बदला व कंपनी इंपीरियल कंपनी से आईटीसी हो गई। कंपनी के बढ़ते कारोबार के साथ स्थानीय स्तर पर पर स्टाफ की ज़रूरत बढ़ने पर कंपनी में प्रशासनिक स्तर पर स्टाफ की संख्या बढ़ी और बाहर से आने वाले आफिसर स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों ने अपने लिए स्थान बनाए तो फर्नीचर के साथ ही घर की सजावट के सामान की ज़रूरत महसूस की तो इन प्रशासनिक अधिकारियों का ध्यान स्थानीय तौर पर निर्मित कलाकृतियों की ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार शुरुआती दौर में उपलब्ध कलाकृतियों की खरीदारी बढ़ने लगी। धीरे-धीरे मांग बढ़ी तो ग्राहक अपनी पसंद की कलाकृतियां बनवाने लगे। ऐसी धारणा आम लोगों की है कि बाज़ार में जब नए प्रोडक्ट आने लगे तो स्थानीय लोगों की उनमें रुचि बढ़ने लगी। बाज़ार भी बढ़ने लगा। इस प्रकार कंपनी के आगमन से स्थानीय हुनर को बढ़ने में सहयोग मिला।

अपनी बात को जारी रखते हुए मो. अली जी ने बताया कि हमारे जवान होने तक बैंडसा मशीन व खराद करने की मशीनें आ चुकी थीं। लेकिन इनको हम पैरों से चलाते थे। मोटर का इस्तेमाल एक तो बिजली सप्लाई न होने व आर्थिक तंगी के कारण उस पर आने वाले खर्च को सहन न कर पाने के कारण नहीं हो सकता था। लेकिन जैसा भी था, थोड़े में लोग खुश थे और चूल्हा चौका सब का चलता रहता था लेकिन 1975 की ज़बरदस्त मन्दी आई तो लोगों के कारख़ाने उजड़ने लगे। उद्योग में कार्यरत मजदूरों में भूखमरी की हालत आ गई। उद्योग में काम करने वाले दस्तकार रिक्शा चलाने, ठेला खींचने, सब्जी की रेहड़ी लगाने पर मजबूर हो गए। यह समय था जब पहली बार नगर से दस्तकारों का पलायन शुरू हुआ, उन्होंने बताया कि उनकी उम्र उस समय 14 या 15 साल की रही होगी जब वह सहारनपुर से मुम्बई काम करने के लिए निकल गए थे।

बरसों मुम्बई में काम करने के बाद लौटे तो अपना कारोबार फिर से

शुरू किया व धीरे-धीरे व्यवसाय में स्थापित हो गए। वर्तमान में अपने आर्थिक हालत से संतुष्ट उस्ताद कहते हैं कि आज मैं अच्छी भली हालत में हूँ। लेकिन मेरे अन्दर के कलाकार को आज भी भूख है हालाँकि अपने संघर्षों के दिनों में भी मैंने अपनी आत्मा के अन्दर छुपे हुये कलाकार को कभी मरने नहीं दिया और अपने पीछे खड़ी कलाकृति की ओर उंगली का इशारा करके कहा कि मैं अपने संघर्ष के दौर में इस तरह की कलाकृतियों द्वारा अपने आप को संतुष्ट करने की कोशिश करता। इस तरह के सभी शाहकार मैं बिना किसी ऑर्डर के बनाता था। लेकिन इस तरह के कलात्मक उत्पाद खरीदने वाले लोग खुद मेरे पास आते भी रहे।

यह पूछने पर कि क्या वर्तमान में भी इस तरह की कलात्मक कलाकृतियों के खरीदार हैं। उनका कहना था कि हर दो या तीन महीने के अन्दर इस तरह के उत्पाद के खरीदार मेरे पास आते हैं और मुँहमाँगे दाम देकर अपनी पसंद की कलाकृति बनवाना चाहते हैं। उस्ताद ने अपनी जबान में बताया कि ऐसे कलाप्रेमियों का कहना होता है कि 'दाम आपके मुँह माँगे और उत्पाद हमारी पसंद का।'

इस तरह की कलात्मक कृतियों की माँग करने वाले कौन लोग हैं, इस सवाल पर उनका जवाब था कि वर्तमान में ऐसे बहुत से हमारे हिन्दुस्तानी भाई हैं जिनके रिश्ते नातेदार लोग विदेशों में हैं और वह विशेष अवसरों पर अपने दोस्तों व सम्बन्धियों को गिफ़्ट देने के लिए इस तरह के कलात्मक तोहफा देना पसंद करते हैं जिनमें भारतीय कला की झलक हो। ऐसे लोग मुँहमाँगे दाम देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

विदेशी कला प्रेमी भी ऐसी कलात्मक कृतियों व दस्तकारों को खोजते रहते हैं। उस्ताद ने बताया कि खुद उनके पास कई बार सपरिवार विदेश जाने के प्रस्ताव आए मगर उन्होंने देश छोड़ना पसंद नहीं किया। सन् 2014 में चाईना 'वर्ल्ड वुड डे' का आयोजन किया गया था जिसमें विभिन्न देशों के दस्तकारों को बुलाया गया था। उस्ताद मो. अली इस आयोजन में भारत के एकमात्र प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुए थे। उनका कहना था कि इस आयोजन के बाद ही उनको विदेश से कई ऐसे प्रस्ताव प्राप्त हुए थे।

इस सवाल पर कि वर्तमान में दम तोड़ती हुई दस्तकारी को बचाने के लिए क्या वह अपने स्तर से कोई कोशिश करते हैं। उनका भावुक जवाब था

कि उनके अपनी कोई संतान नहीं है और यहाँ कार्यरत युवा कारीगरों को हर सप्ताह जब उनका वेतन देते हैं तो हर युवा को उनकी वाजिब मजदूरी के अतिरिक्त तीन से चार हजार रुपये तक अलग से देता हूँ। इस तरह मैं हर महीने 15-16 हज़ार रूपये उनको देता हूँ। सिर्फ़ इसलिए कि मैं उनको कला सिखाता हूँ। उसमें उनकी रूचि बनी रहे। इससे एक अन्जान सी खुशी का अहसास मेरे अन्दर पैदा होता है।

उस्ताद मो. अली उन दस्तकारों को 'स्वतंत्रता सेनानियों' की श्रेणी में रखते हैं जिन्होंने 1975 व 1990 के मुश्किल दौर में पलायन किया। वहाँ से अपने हुनर के ज्ञान को बढ़ाया, घर वापसी की तो नगर की कला को समृद्ध किया और नगर तक सीमित हस्तकला को देश के कोने-कोने तक पहुँचाया और विदेशों में अपनी कला को पहचान व प्रसिद्धी दी। वह चाहते हैं 'स्वतंत्रता सेनानियों' की तरह उन बचे हुए 60-65 दस्तकारों को सम्मानित किया जाए। कला में उनके योगदान को स्वीकार किया जाए।

उम्र के 70 पड़ाव पार करने के बाद अभी आप के अन्दर और क्या करने का जज़्बा है। उस्ताद कहते हैं कि बहुत कमाया है जिन्दगी भर मेहनत की है। मैं अब यह चाहता हूँ कि आज़ादी के साथ बिना किसी प्रेशर के अपनी पसंद की कलाकृतियाँ बनाऊँ और युवाओं को कला का ज्ञान पहुँचाऊँ। जितना मैंने सीखा है उनमें भर दूँ। इस कला को ज़िन्दा रखना व आने वाली नस्लों तक पहुँचाना मैं अपना ईमान मानता हूँ। अब इसी कोशिश में हूँ।

उस्ताद शागिर्द की रवायत व परम्परा के ज़िक्र पर वह बेहद भावुक हो गए। पुराने दौर की यादों में झाँकते हुए बडे भावुक अन्दाज़ में बताया कि उनके बाबा अमीर हसन अपने वक्त के बड़े सम्मानित उस्ताद रहे, नगर के अनेक मौहल्लों के नाम गिनाते हुए बताते हैं कि आज भी लोग अमीर हसन को याद करते हैं और उनका नाम सम्मान से लेते हैं।

अचानक उनकी आवाज़ और भी बुलन्द हो जाती है। यह कहते हुए वह अपने आप गर्व करने लगते हैं कि खुद उनके कई भाई हैं लेकिन परिवार के वह अकेले ऐसे हैं जिसने बाबा से मिलने वाली कलात्मक विरासत को जिया व ज़िन्दा रखा हुआ है।

अपने खुद के शागिर्दों का ज़िक्र करते हुए उस्ताद की आँखों में चमक

आ जाती है। बताते है कि देश के जिस हिस्से में भी लकड़ी पर नक़्क़ाशी का काम हो रहा हो वहीं मेरा कोई एक शागिर्द ज़रूर मिल जाएगा। उनका कहना था कि उनके शागिर्द जो देश से बाहर खाड़ी के देशों में कार्यरत है वहाँ से समय-समय पर मेरे लिए कपड़े, जूते मुझे तो भेजते ही हैं, मेरी शरीक-ए-हयात को भी उस्तादनी के लिए कहकर भेजते हैं। शागिर्दों से मिलने वाले सामान से अभिभूत उस्ताद इन संस्कारों को अपनी विरासत से जोड़ते हैं। और ऐसा न करने वाले शागिर्दों को 'नालायक' की श्रेणी में रखते हैं। ऐसे शागिर्दों के लिए उन्होंने उर्दू मुहावरा बोला कि—

बा-अदब बा-नसीब

बे अदब - बे नसीब

यानि जो शिष्य अपने गुरू का सम्मान करते हैं वह भाग्यशाली होते हैं, जबकि गुरू का सम्मान न करने वाले दुर्भाग्य को प्राप्त होते हैं।

उस्ताद बड़े यकीन के साथ बताते भी हैं कि जिन शागिर्दों ने उस्ताद की इज़्ज़त नहीं की उनके घरों में हमेशा आर्थिक बदहाली देखी गई है।

उस्ताद शागिर्द के बीच सम्मान के रिश्ते की परम्परा सगे रिश्तों में प्रेम भाव के संस्कारों की झलक ही उनका यक़ीन था।

उन्होंने अपने वक्त की एक रवायत का जिक्र किया कि हमारे ज़माने में दस्तकार कारीगर अपनी बेटी व बहन को दहेज में देने वाला पलंग का तकिया खुद अपने हाथों से तैयार करते थे। उन्होंने बताया कि खुद उनको दहेज में जो मुसहेरी (पलंग) मिला था उसका तकिया उनके ससुर ने बनाया जोकि उनके अब्बा के शागिर्द भी थे।

आख़िरी शब्द जो उस्ताद मो. अली ने अपनी जबान से अदा किए वे थे कि उनके अपनी कोई संतान नहीं है। लेकिन वह अपनी बीवी से बेहद प्यार करते हैं सो इसलिए उन्होंने अपनी फर्म का नाम उन्हीं के नाम पर 'नसीमा वुड हैन्ड्रीक्राफ्ट' रखा है।

उस्ताद मो. अली जब यह बयान कर रहे थे तो मेरी आँखों के सामने 2007 में अपनी कोयले की दुकान पर बैठे उस्ताद शकूर थे जिन्होंने अपनी शादी की पहली रात अपने हाथ से बनायी हुई कंघी अपनी दुल्हन को पेश की थी (तज़करा)।

मुलाक़ात

मेहन्दी हसन

कारीगर व्यवसायी मेहन्दी हसन का 60 वर्षीय पूरा जीवन संघर्ष व उपलब्धियों का ब्यौरा है।

राज मिस्त्री का काम करने वाले उनके पिता ने घर की आर्थिक बदहाली के चलते बचपन में ही उनको लकड़ी के कारखाने पर काम सीखने के लिए छोड़ दिया था। 5 बहनों, 2 भाईयों के परिवार में जब उनका छोटा भाई 6 महीने का ही था और वह 12 साल के, पिता का साया सर से उठ गया था। इसके बाद पूरे कुनबे के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी उनके सर पर थी। स्कूली शिक्षा हासिल करने का तो कभी मौका ही नहीं मिला।

मेहन्दी हसन बताते हैं कि उन्होंने कारीगरी को ही ज़िन्दगी चलाने का वसीला बनाने का फ़ैसला कर लिया था। इसी से घर चलाया, 3 छोटी बहनों और 2 छोटे भाईयों की शादी करने के बाद अपनी शादी की और आज भी अपने हुनर से घर चला रहे हैं। वह कहते हैं कि 25 साल तक काम सीखने व मज़दूरी करने के बाद पहले-पहले रहल बनाई, काम आगे बढ़ा तो तीन टाँग वाली मेज़ बनानी शुरू की, इस प्रकार ज़िंदगी चलती रही।

शादी के बाद भी उनका संघर्ष जारी रहा। बताते है कि पत्नी रुख़साना पालिश की बढ़िया कारीगर हैं, जिसके साथ आने से काम में हाथ बँटाने वाले

का इज़ाफ़ा हो गया तो मज़दूरी भी बढ़ी। दोनों पति-पत्नी घर पर ही काम करते रहे, तीन बेटियों व दो बेटों की पैदाईश के बाद घर की ज़िम्मेदारी बढ़ती गई। दोनों ने मिलकर फ़ैसला किया कि कैसी भी हालत में रहें बच्चों को अनपढ़ नहीं रखना है। मैं कारखाने से काम लेकर घर लाता। घर पर रहकर ही हम काम करते रहे, बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते रहे वह हमारे काम में हाथ बँटाते थे, स्कूल की शिक्षा भी जारी रही। आज भी यही सिलसिला जारी है। परिवार के सभी सदस्यों से उन्होंने मेरा परिचय कराया।

बड़ी बेटी ने एम.एस.सी. किया है और एम.बी.बी.एस. की परीक्षा दी, लेकिन सफल नहीं हो सकी तो आई.ए.एस. की परीक्षा के लिए सरकारी कोटे से कोचिंग करने के बाद 2 बार आई.ए.एस. की परीक्षा दी है, कामयाब नहीं हो सकी। आगे भी इसी परीक्षा के लिए तैयारी कर रही है।

दूसरी बेटी तरन्नुम ने एम.कॉम. के बाद जी.एन.एम. 4 वर्षीय मेडिकल कोर्स किया है। नगर के सरकारी हस्पताल में ट्रेनिंग कर रही है।

तीसरी बेटी एम.ए. करने के बाद लॉ की पढ़ाई कर रही है, बड़ा बेटा ज़ुल्फ़िकार लॉ करने के बाद प्रैक्टिस करता है और एल.एल.एम. की तैयारी कर रहा है। छोटे बेटे अरशद ने एम.बी.ए. करने के बाद यूनिटेक कम्पनी में ज्वाईन किया। आज भी हमारा परिवार अपना पुश्तैनी काम मिलजुल कर ही करता है।

सफल पारिवारिक जीवन के साथ-साथ मेहन्दी हसन ने अपने सामाजिक जीवन के बारे में चर्चा करते हुए बताया कि बचपन से ही सामाजिक कार्य करने का उन्हें शौक रहा है अपने व्यस्त पारिवारिक जीवन से वक्त निकालकर वह समाज से जुड़े काम करते रहे। अनपढ़, गरीब महिलाओं के कहने पर वह राशन कार्ड, पेन कार्ड, विधवा व वृद्धा पेन्शन के लिए कार्ड बनवा दिया करते थे। ऐसे ही सामाजिक सेवा के काम करते हुये उन्हें यूनिसेफ के साथ काम करने का मौका मिला, सामाजिक कार्यों के माध्यम से ही वह राजनीति में सक्रिय हुए तो नगर के लोकप्रिय राजनेता, केन्द्र सरकार में स्वास्थ्य मन्त्री रहे काज़ी रशीद मसूद के सम्पर्क में आ गए और 2004 में नगर पालिका में मनोनीत सभासद रहे। बाद में दस्तकारी उद्योग में कार्यरत कारीगरों की आर्थिक, सामाजिक स्थिति पर चर्चा करते हुये वह कहते हैं कि आज़ादी के

बाद देश का बँटवारा हो गया। हिन्दुस्तान में ही रहने का फ़ैसला करने वाले मुसलमानों के सामने भविष्य का सवाल था। वह कहते हैं कि विभाजन के बाद मुलसमानों का कुलीन, अशराफ़ समुदाय पाकिस्तान हिजरत कर गया था। समुदाय का केवल पिछड़ा वर्ग जो दस्तकार समुदाय था उसके पास सिर्फ़ उसकी दस्तकारी व हाथ का हुनर ही था। मैं मानता हूँ कि आज़ादी के पश्चात् इस देश में रहने वाले पसमान्दा मुसलमानों को उनकी दस्तकारी ने ही जीने का सहारा दिया। मुश्किल से ही सही वह अपना जीवन खींचते रहे। सहारनपुर की काष्ठ कला में कार्यरत पिछड़ी जातियों की स्थिति व इतिहास यही है। हमारे जैसे परिवारों ने विगत 70 वर्षों में इसी उद्योग से जीवन चलाया और धीमी गति से ही सही, अपनी आर्थिक स्थिति को भी बेहतर बनाने में कामयाब रहे है।

काष्ठ कला के प्रति सरकारी नीति व कल्याणकारी योजनाओं के विषय पर पूछे गए सवाल पर मेहन्दी हसन ने अपना अनुभव साझा करते हुए बताया कि सन् 2008 में श्रम विभाग की ओर से अपने अधिकारियों के साथ श्रम आयुक्त ने हमारे साथ सम्पर्क किया था। श्रम विभाग की ओर से अधिकारीगण श्रम विद्यालय खोलने की योजना लेकर आए थे। योजना के अन्तर्गत 6 श्रम विद्यालय खोले गए थे। यह विद्यालय सफलतापूर्वक चलते रहे। इन विद्यालयों में 14 साल व अधिक आयु के युवाओं को प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ हुनर की तालीम दी जाती थी। युवा कारीगरों ने इसमें बढ-चढ़ कर हिस्सा भी लिया मैं खुद ट्रेनर रहा व मेरे कुछ साथियों ने इसमें सहयोग किया। यह श्रम विद्यालय 6 साल चलकर बन्द करने पड़े। 6 सालों तक श्रम विभाग की ओर से न तो ट्रेनर को उनका वेतन दिया गया न ही ट्रेनिंग देने के लिए लकड़ी के कच्चे माल का भुगतान हुआ और न ही औजारों की कीमत चुकाई गई। जबकि विभाग की ओर से पूरे प्रबंधन की जिम्मेदारी उठाने का आश्वासन दिया गया था। श्रम विभाग के बडे अधिकारी समय-समय पर निरीक्षण के लिए आते रहे, उपस्थिति रजिस्टर व अन्य दस्तावेज़ भी लेते रहे। श्रम विभाग के धोखे के बाद आर्थिक मजबूरियों के चलते हमें इन केन्द्रों को बन्द करना पड़ा।

उनका कहना था कि सरकार की ओर से योजनाएँ तो आती हैं लेकिन वह गरीब कारीगरों तक नहीं पहुँच पाती। दलाली व्यवस्था के चलते बिचौलियों के हत्थे चढ़ जाती है।

उस्ताद शागिर्दी की परम्परा के प्रति अपना भावनात्मक रिश्ता होने के बावजूद इसके व्यवहारिक व बदलती हुयी परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया देते हुए बताया कि उस्ताद व शागिर्द के बीच अदब सम्मान व मोहब्बत का रिश्ता होता था। उस्ताद मेहनत व मोहब्बत से अपने शागिर्द को हुनर सिखाता था व शागिर्द अदब सम्मान व समर्पण के साथ उस्ताद से हुनर को सीखता था। हुनर की बारीकियों को सीखने में 15–20 साल तक भी लग जाया करते थे। वर्तमान परिस्थितियों में न तो आर्थिक हालात यह मोहलत देते हैं कि एक युवा इतने सालों तक सिर्फ़ हुनर सीखने में लगा दे, न ही वह संस्कार बचे हैं जो उस्ताद शागिर्द को भावनात्मक रिश्ते में जोड़ दिया करते थे। लेकिन उनका मानना है कि हुनर को न बचाया गया तो भविष्य में उद्योग पर भी संकट गहरा सकता है।

अपनी बातचीत के आख़िर में उनका सुझाव था कि कला को बचाने के लिए ऐसे कला केन्द्र खोले जाने चाहिए जहाँ पर युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सके, इसके लिए सरकारी सहायता की ज़रूरत होगी। इसलिए सरकार को आगे आना चाहिए।

मुलाक़ात

हाजी नासिर

नगर की सीमा पर स्थित खाताखेड़ी घनी आबादी का इलाक़ा है। हज़ारों की संख्या में कारीगर परिवार यहाँ आबाद हैं। सैकड़ों कारखानों में हज़ारों कारीगर यहाँ कार्यरत हैं। हाजी नासिर एक सफल व्यवसायी हैं, उनके कारखाने में सैकड़ों की तादाद में कारीगर दिन-रात काम करते हैं। देश के अनेक शहरों में उनका तैयार किया हुआ माल सप्लाई होता है। कारखाने पर ही उनसे बातचीत का मौक़ा मिला। व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक बिन्दुओं पर उन्होंने खुलकर अपनी बात को रखा।

55 वर्षीय हाजी नासिर ने बताया कि उनका परिवार यहाँ उस वक्त से रहता है जब यह एक कच्ची बस्ती थी। लोग इधर आते भी नहीं थे यहाँ पर हर तरह का अभाव था। उनका पूरा कुनबा पिता, ताऊ, चाचा, मामा सभी इसी पेशे से जुड़े हुये हैं। उन्होंने बताया कि आर्थिक तंगी के कारण बचपन से ही काम सीखने के लिए बडे भाई इस्माईल के पास बैठने लगे। मेरे बड़े भाई ही मेरे उस्ताद हैं। परिवार में आर्थिक तंगी पहले से ही थी मगर 1974-75 की मन्दी ने घर पर भूखों मरने के हालात पैदा कर दिए। काम मिलना बिल्कुल बन्द हो गया था। मजबूरी के कारण मैंने सब्ज़ी की फेरी लगाकर घर का खर्च चलाना शुरू किया। उन्हीं दिनों की बात है कि एक गली से आवाज़ लगाता हुआ गुज़र

रहा था कि एक महिला ने मुझे बुलाकर कहा कि 'बेटा आप इतने सुन्दर हो, कोई काम क्यों नहीं कर लेते, फेरी लगाते क्यों फिरते हो। मैंने घर आकर यह बात अपनी अम्मी को बताई। माँ ने समझाया कि बेटा कोई भी काम करने के लिए पैसे की ज़रूरत होती है और हम तो दो वक्त की रोटी के लिए भी संघर्ष कर रहे है। माँ ठीक कह रही थी, लेकिन महिला की बात का मेरे मन पर गहरा असर हुआ था। मैंने निश्चय किया कि मैं अपना पुश्तैनी व्यवसाय ही करूँगा। मगर पूंजी की ज़रूरत थी, इसके लिए मैंने उस समय एक लॉटरी पड़ोस में रहने वाले एक परिवार में जोड़ी। इसमें हर महीने एक छोटी रकम दी जाती थी। मेरा नम्बर आने पर मुझे 10 हज़ार रुपये की रकम मिल गई।

10 हज़ार की इस छोटी रकम से मैंने अपना काम शुरू किया। इस समय मेरी आयु 14–15 साल की ही थी। मैंने घर पर रहकर ही पैन जार, रहल बॉक्स आदि छोटे–छोटे आईटम तैयार करना शुरू किये। परिवार के सभी लोग लगन से काम करते थे। छोटी पूँजी होने के कारण काम में उतार चढ़ाव आते रहे, लेकिन किसी तरह घर की ज़रूरतें पूरी हो ही जाती थीं।

1990 में लकड़ी व्यवसाय में एक नया मोड़ आया। हमारे इलाके के कारीगरों ने नक्काशीदार मेज़, सोफ़ा, गार्डन चेयर, बेड बनाने शुरू किये। यही समय था जब देश के बड़े शहरों में क्राफ्ट मेले आयोजित होने लगे थे। हम लोग अपना फर्नीचर तैयार करते और क्राफ्ट बाज़ार में बेचने के लिए ले जाने लगे। इस तरह हमें अपने देश में एक घरेलू बाज़ार मिलने लगा। यहाँ तैयार माल भी बिक जाता था और आर्डर भी मिल जाया करते थे। इर तरह धीरे–धीरे हमारा व्यवसाय बढ़ा तो मैं भी कारोबार में स्थापित हो गया। एक गहरी साँस लेकर हाजी नासिर ने अपने आप पर थोड़ा गर्व करते हुए कहा कि 1998 तक हमारे पास कुछ नहीं था लेकिन आज 2022 में सब कुछ है। अपनी मैन्यूफैक्चरिंग है, देश के कई बड़े शहरों में सप्लाई है, आर्डर की कमी नहीं है, क्राफ्ट मेलों / बाज़ारों के लिए माल तैयार होता है और एक्सपोर्ट लाईसेंस है, जल्दी ही निर्यात शुरू होने वाला है। अपने व्यवसायिक व पारिवारिक जीवन से सन्तुष्ट नासिर ने बताया कि उनका बेटा 10वीं व बेटी 9वीं क्लास की छात्रा है। बेटे को वह अपने व्यवसाय में रखना पसंद करते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि व्यक्ति को नौकरी माँगने वाला नहीं बल्कि नौकरी पैदा करने व नौकरी देने वाला होना चाहिए।

मशीनीकरण के बढ़ते प्रयोग से काष्ठ कला पर गहराते संकट पर उनका जवाब, मेरे लिए एक रहस्योद्घाटन की तरह था, उन्होंने बताया कि सहारनपुर में जमोया (जामुन), पापडी, शीशम, आम और सागवान की लकड़ी पर नक्काशी की जाती है और यह लकड़ी की ऐसी किस्में है जिन पर केवल हाथ से ही नक़्क़ाशी की क़दर और महत्व है। इसलिए हमारे कारखानों में आज भी 90 प्रतिशत हाथ के हुनर की ही ज़रूरत है और सहारनपुर की वैश्विक पहचान भी हैण्डीक्राफ्ट से है। इसके दो कारण और भी हैं एक तो जैसा जालीदार काम और नक़्क़ाशी हमारे यहाँ की जाती है वह केवल हाथ से ही हो सकती है, क्योंकि हमारे अपने डिजाईन होते हैं, और उनकी विशेषता यही है कि वह ऐसे तैयार किये जाते है जो केवल हाथ का हुनर माँगते हैं। दूसरे यह कि ऐसा काम आज भी मशीनों द्वारा तैयार करने पर महँगा पड़ता है जबकि हाथ से तैयार माल सस्ता पड़ता है। उन्होंने बताया कि यूँ समझिए कि मशीन द्वारा तैयार एक उत्पाद की लागत यदि 10/- रुपये आती है तो कारीगर वह उत्पाद 5/- रुपये में ही तैयार कर देता है। जिसकी क्वालिटी भी बेहतर होती है। इसलिए काष्ठ कला में हुनरमन्द मज़दूर की ज़रूरत हमेशा बनी रहेगी।

उस्ताद शागिर्द की परम्परा से हाजी नासिर भी भावनात्मक लगाव रखते हैं। उनका मानना है कि हम कारीगर परिवारों के लोग हमेशा अपने पूर्वजों के ऋणी रहेंगे। 400 साल पहले उन्होंने जिस हुनर को अपने खून पसीने से सींचा वह हुनर ही हमारे अस्तित्व बचाने का कारण बना, उनका मानना है कि हुनर को नस्ल दर नस्ल हस्तांतरित होना चाहिए, और यह ज़िम्मेदारी हमारी है, हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों को यह हुनर पहुँचाना है। सरकार अगर चाहे तो सामुदायिक सहयोग से इस कला को आगे बढ़ाने व बचाने में अपनी भूमिका निभा सकती है। चीन के औद्योगिक प्रगति में वहाँ की सरकारी नीतियों की बुनियादी भूमिका रही है। इस तरह की नीति औद्योगीकरण में चर्चा में रहती है। मैं भी यही मानता हूँ कि न तो हमारी क्वालिटी चीन से कमतर है और न ही हमारे कारीगर अपनी कला में कमतर हैं। वह मेहनत भी खूब करना जानते हैं। यदि सरकारी योजनाओं का लाभ नीचे तक पहुँचने लगे व सरकारी नीतियाँ इस उद्योग के हित में हों तो कोई वजह नहीं है कि हम वैश्विक स्तर पर चीन के साथ प्रतिस्पर्धा में पीछे रहें।

मुलाक़ात

उस्ताद असग़र

व्यवसायी हाजी नासिर से जिस वक्त उनके दफ़्तर में चर्चा चल रही थी। फटेहाल एक बुजुर्ग ख़िदमतगार की तरह दफ़्तर के छोटे-छोटे काम करने में लगे हुए थे। आयु यही 65 से 70 के बीच होगी, वह आदमी आफ़िस में रखे छोटे-छोटे शो पीस को साफ़ करने, आने वाले लोगों को अटैन्ड करने व छोटा-मोटा सामान इधर से उधर करने में मसरूफ़ थे। इसी बीच मालिक ने बात करते-करते उन्हें सम्बोधित करते हुए चाय लाए जाने का ऑर्डर देते हुए कहा कि 'उस्ताद चाय नाश्ते का बन्दोबस्त करो।'

यह सुनकर मेरे मुँह से अचानक निकला 'उस्ताद' तो हाजी नासिर ने बताया कि यह नगर के बहुत ही माहिर उस्तादों में एक हैं—'उस्ताद असग़र'। मैंने सोचा व्यवसायी ने शायद उनकी तंगहाली पर तरस खाकर अपने पास रख लिया है। छोटे-मोटे कामों की एवज़ में उनका खर्च उठाते होंगे। 'जिज्ञासावश' मैंने पूछ लिया 'उस्ताद क्या अब भी हुनर से जुड़े हुए हैं।' पूछने पर उन्होंने बताया कि उनकी एक डील रिलायंस इण्डस्ट्री वालों से फाईनल होने वाली है। कम्पनी से हुए एग्रीमेन्ट की शर्त है कि वह केवल कलात्मक उत्पाद ही खरीदेंगे और इसके लिए मैंने उस्ताद के द्वारा बनाए गए कुछ सैम्पल कम्पनी को भेजे थे जो पास होकर वापस आए हैं और मार्च 2022 से बिज़नेस शुरू होने वाला है।

मेरे सैम्पल देखने की इच्छा जताने पर हाजी नासिर ने वह सभी सैम्पल मुझे दिखा दिए। एक से बढ़कर एक सुन्दर उत्पाद थे। बारीक और नफ़ीस नक़्क़ाशी की अद्भुत मिसाल। सैम्पल देखकर उस्ताद असग़र से बात करने की मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी, मैंने अलग से उनसे बात करने का समय माँगा, डरते और झिझकते हुए उन्होंने मुझे बात करने के लिए दूसरे दिन मिलने का वादा कर लिया।

निश्चित समय पर मैं पहुँचा और बात होने लगी। ज़िन्दगी के बहुत दर्द और कड़वे अनुभव थे जो उस्ताद असग़र ने साझा किए। उनका बचपन बेहद ग़रीबी और अभाव में गुज़रा था। यहीं से उन्होंने अपना दर्द बयान करना शुरू किया। माता-पिता और बहन भाईयों के साथ परिवार के 9 सदस्यों के पालन-पोषण का भार उनके पिता के कन्धों पर था। भंगी कालोनी में किराये के मकान में जीवन-यापन करने वाले उनके पिता फ़रज़न्द पेड़ों के कटान के माहिर थे। यह वह समय था जब खड़े पेड़ को कुल्हाड़ी की मदद से काटा जाता था। उस्ताद इस बात पर आज भी गर्व करते हैं कि उनके पिता अपने समय के माहिर काट्टिए (पेड़ काटने वाले) थे। मिसाल देते हुए बताते हैं कि केवल मेरे पिता ही थे कि अगर बिजली के तार भी पेड़ के नीचे से गुज़रते होते तो वह पॉवर बन्द नहीं कराते थे, और पेड़ की टहनियों को ऐसी महारत से काटते थे कि टहनियाँ इधर-उधर ही गिरती थीं। यह अपने समय-काल में बहुत बड़ी महारत मानी जाती थी। गुज़रे हुए वक्त को याद करते हुए वक्त के दिए हुए ज़ख़्म उनकी उदास आँखों से छलकने लगते हैं उन्होंने जो बताया वह तो उस्ताद शागिर्द परम्परा की पूरी नकारात्मक दास्तान थी। अत्याचार, बेरहमी, संवेदनहीनता व अमानवीय आचरण का वर्णन था जो उस्ताद असग़र ने सुनाया।

परिवार की तंगहाली से मजबूर उनके पिता ने उनको उस्ताद छोटे के पास काम सीखने के लिए बैठा दिया था। इस समय वह केवल 5 साल के थे। पूरा-पूरा दिन वह उस्ताद के साथ गुज़ारते, लेकिन उस्ताद उन्हें काम के बारे में कुछ भी नहीं बताते थे। पूरा दिन उस्ताद उनसे अपने घर का काम कराते। घर के छोटे-मोटे काम करना, उस्ताद को पानी पिलाना, चाय लाकर देना, बीड़ी-सिगरेट खरीद लाना जैसे काम उनसे लिए जाते। वक्त गुज़रता गया वह कहते हैं कि जब भी मैं काम के बारे में उनसे कोई जानकारी चाहता, उस्ताद मुझे बुरी

तरह झिड़क देते। छोटी-छोटी बात पर मार-पीट करना तो उस्ताद की आदत थी। इसीलिए कोई दिन ऐसा नहीं गुज़रता था जब मुझे उस्ताद के थप्पड़ न पड़ते हों। शागिर्द बहुत समय तक उनके पास ठहरते भी नहीं थे। लेकिन परिवार की बदहाली और हुनर सीखने की ललक और एक अनजानी सी उम्मीद उन्हें उस्ताद का साथ छोड़ने नहीं देती थी। यादें ताज़ा करते हुए उन्होंने बताया कि जब कई बरस गुज़र गए और मैंने कुछ भी नहीं सीखा तब खुद उस्ताद को देखकर काम सीखने का निश्चय लिया। एक घटना को याद करते हुए उन्होंने बताया कि एक दिन उस्ताद किसी काम से बाहर गए हुए थे, मैंने बेकार बचे हुए लकड़ी के एक टुकड़े को उठाया और उस्ताद को जैसे नक़्क़ाशी करते हुए देखता था, उसी तरह नक़्क़ाशी करने की कोशिश की और उस्ताद के पहुँचने से पहले जिस टाट पर मैं बैठा था उसके नीचे छुपा दिया। लेकिन किसी तरह लकड़ी का वह टुकड़ा उस्ताद के हाथ लग गया, पहले तो उन्होंने उनके साथ पूछताछ की और कहने लगे कि उसने उनकी लकड़ी खराब कर दी और यह कहकर बुरी तरह पिटाई शुरू कर दी, थप्पड़ और लात-घूसों से जब उस्ताद का गुस्सा कम नहीं हुआ तो उन्होंने पास पड़ी हुई आरी (लकड़ी काटने का छोटा औजार) उनके हाथ पर बरसा दी, जिससे हाथ लहुलुहान हो गया और कई महीने गुजरने के बाद भी हाथ के घाव नहीं भरे लेकिन वह उस्ताद के साथ बने रहे। उम्र बढ़ने के साथ घर की बदहाली को मैं समझने लगा था और फ़िक्रमन्द रहने लगा था। उनका कहना था कि मैं समय-समय पर उस्ताद को अपनी परेशानियाँ बताकर कहता कि मैं एक बहुत गरीब परिवार से हूँ, मेरी आर्थिक ज़रूरतें हैं लेकिन उस्ताद मेरी बात को सुनी अनसुनी करके टाल जाते।

17 साल उस्ताद के साथ रहने के बाद उनके पास काम करने का कुछ अनुभव और आत्मविश्वास आया तो उन्होंने अपना खुद का काम करने का फैसला लिया और उस्ताद से अलग हो गए।

उस्ताद से अलग होने के बाद उस पूरे घटनाक्रम का सिलसिलेवार ज़िक्र करते हुए वह कहते हैं कि मुझे सबसे पहले औजारों का इन्तज़ाम करना था। बताते हैं कि जब औज़ार बनवाने के लिए मैं लुहार के पास गया तो भूरे लोहार ने बताया कि उनके उस्ताद लोहार के पास गए थे और उन्हें औज़ार

बनाने से मना कर गए हैं। मुश्किल बढ़ गई थी शहर में केवल भूरा, कालू और मूछडीया औज़ार बनाने वाले तीन ही कारीगर थे, तीनों उस्ताद के दबाव में थे। किसी तरह भूरे लोहार ने हामी भरी और मैंने 1.25 पैसे में औज़ार खरीदे और अपना काम शुरू किया।

यह पूछने पर कि उस्तादों का शागिर्दों के प्रति यह सामान्य व्यवहार था कि उस्ताद का व्यक्तित्व ही ऐसा था। उस्ताद असग़र कहने लगे कि बहुत पहले मैंने एक फिल्म देखी थी 'सूर्या' उसके संवाद बोलकर बताए कि ठाकुर का दास ठाकुर के चरित्र का बखान करते हुए कहता है कि ठाकुर की भैंस अगर घास न खाए तब भी सेवक पिटता है और भैंस दूध ना दे तब भी वही मार खाता है, जब कि वह दास बिल्कुल निर्दोष होता है।

मैंने बात और साफ शब्दों में बताने के लिए कहा तो बताया कि उस्तादों के अपने निजी जीवन से उनके व्यवहार पर गहरा प्रभाव होता था। अपने व्यक्तिगत तनाव को वह शागिर्दों पर उतार देते थे, और बिना किसी वजह के भी अपने पास काम सीखने वाले शागिर्दों के साथ मार-पीट करते थे। उनका अनुभव था कि उस समय गरीब परिवार के लोगों का मकसद अपने बच्चों को सिर्फ़ हुनर सिखाने पर होता था, आर्थिक लाभ को वह दोयम दर्जे में रखते थे, उस्ताद अभिभावकों की इस प्रवृत्ति को अच्छी तरह समझते थे, और एक शागिर्द को हुनर सिखाने के नाम पर 15-20 साल तो सामान्य तौर पर उनसे सेवा लिया करते थे।

मैंने सवाल किया कि आज इतने बरसों बाद आप उस्ताद-शागिर्द की रवायत को कैसे याद करते हैं। उस्ताद ने जवाब दिया कि इन सब नकारात्मकता के बावजूद शागिर्द का उस्ताद से भावनात्मक रिश्ता कायम हो जाता था। वह अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं कि आज भी मेरे सपने में जितनी बार मेरे उस्ताद 'छोटा' आते हैं, मेरे माँ-बाप नहीं आते। हालाँकि मैं निजी तौर पर मार-पीट के खिलाफ़ हूँ और मानता हूँ कि मार-पीट से कोई इन्सान अपराधी तो बनता है सुधार की गुंजाईश कम रहती है। पुलिस और अपराधियों के बीच का रिश्ता इस बात को साबित करता है।

वह कहते हैं कि बचपन की सारी तंगियों, परेशानियों व कष्टों के बावजूद कला के प्रति मेरे शौक़, कला के प्रति मेरे समर्पण व जुनून ने मुझे एक

कामयाब हुनरमन्द बनाया। मेरे हुनर को स्वीकार्यता मिलने लगी, लोग मेरे पास आज भी वह काम लेकर आते हैं, जो मुश्किल होता है और कलात्मकता जिसकी ज़रूरत होती है।

मेरे फ़न को पहचान मिली तो कदरदानों में मेरी चर्चा होने लगी, हुनर को ही अपनी पहचान बनाने का संकल्प मैंने बचपन में ही ले लिया था। सारे अभाव के बावजूद मुझे इस बात की संतुष्टि है कि आज मेरा हुनर ही मेरी पहचान है। कलात्मकता आज भी मेरी पहली शर्त है, कला से मुझे बहुत दौलत नहीं मिली, लेकिन इज़्ज़त बहुत मिली, अपनी कला के माध्यम से मैंने देश के लगभग सभी शहरों में अपनी पहचान बनाई। मुम्बई, दिल्ली, चैन्नई, हैदराबाद, चण्डीगढ़, कन्याकुमारी, कोलकाता आदि लगभग सभी बड़े शहरों व सभी राज्यों में अपनी कला के माध्यम से पहुँचा और इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर व बांग्लादेश सरकार की ओर से लगने वाली प्रदर्शनियों में हिस्सा लिया। 1988 में मुझे कला की सेवा के लिए राष्ट्रपति एवार्ड से सम्मानित किया गया। अपनी कलात्मक यात्रा की बहुत सी यादगार कहानियाँ भी उन्होंने साझा कीं। बताया कि सहारा इण्डिया कम्पनी को उन्होंने अपनी तैयार की हुई मेज़ 90 हज़ार में बेची थी। फिल्म स्टार नसीरूद्दीन शाह, शक्ति कपूर के बंगले का गेट व दिलीप कुमार के घर पर फर्नीचर अपने एक व्यवसायी के माध्यम से तैयार किया था। पूरे विवरण का बयान करने के पीछे उनका उद्देश्य कला की महत्ता को दर्शाने के लिए था। उनका नज़रिया है कि ख़रीदार व कद्रदान में फ़र्क होता है। कला के लिए कद्रदान की ज़रूरत है। जब वह मिल जाता है तो फिर पैसों और कीमत की बात पीछे छूट जाती है। कलाकार को ऐसे कद्रदान ज़िन्दा रखते हैं। उन्होंने कहा वह इसकी ज़िन्दा मिसाल हैं। मैंने कभी अपनी कला से समझौता नहीं किया। हमेशा अपनी पसंद का काम करना ही स्वीकार किया।

काष्ठ कला उद्योग के वर्तमान चरित्र व उद्योग में मशीनीकरण के बढ़ते चलन व औद्योगीकरण के बाद कला व हुनरमंद कलाकारों की दशा पर पूछे गए सवाल पर उन्होंने विस्तार से बताया कि 1990 और 1998 के बीच नगर में औद्योगीकरण हुआ और लकड़ी के माल की माँग विश्व स्तर पर बढ़ने के बाद माँग व पूर्ति के दबाव में कला उद्योग में मशीनीकरण बढ़ा। इन परिस्थितियों से

वह उस्ताद जो अपनी कला से समझौता नहीं कर सके वह कला जगत से बाहर हो गए। उन्होंने अपनी मर्जी से फैसला लिया और व्यवसायीकरण की जगह संन्यास को तरजीह देकर बाहर हो गए। ऐसे उस्ताद भी थे जिन्होंने रिक्शा खींचा, सब्जी की फेरी लगाई, चाय की दुकान कर ली। मजदूरी करने लगे लेकिन अपनी कला से समझौता नहीं हुआ तो व्यवसायी वर्ग पैदा हुआ। इस उद्योग में पूंजीपति वर्ग का प्रवेश हुआ, कला उद्योग कार्यरत उस्तादों में लोग इन बदलती परिस्थितियों से तालमेल बैठाने में कामयाब रहे और अपना व्यवसायीकरण कर लिया वह वर्तमान में इस व्यवसाय से लाखों कमा रहे हैं। लेकिन औद्योगीकरण के बाद कला का पतन होना शुरू हुआ और निरंतर बढ़ रहा है।

उस्ताद असग़र इसके बाद सहारनपुर काष्ठ कला के इतिहास पर बात शुरू करते हैं कि नगर में 400 साल पहले यह कला कश्मीरी कारीगरों द्वारा पहुँची। वह कहते हैं कि कश्मीरी कारीगरों के पास यह हुनर अफगानिस्तान से आया। कश्मीर में आज भी यह कला ज़िन्दा है और परवान चढ़ रही है क्योंकि उन्होंने अपनी कला का व्यवसायीकरण नहीं होने दिया और कला को कला के रूप में बनाए रखा है।

पूँजीपति व व्यवसायियों के लिए यह केवल एक ऐसा उत्पाद है जिसे बेच कर लाखों-करोड़ों कमाकर धनपति बना जा सकता है। धन-दौलत ही उसका ईमान और धर्म है जबकि कलाकार के लिए उसकी कलाकृति उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम और उसकी आत्मा की आवाज़ है। एक संगतराश पत्थर को तराश कर उसमें ज़िन्दगी पैदा करता है। हम लकड़ी के हुनरमन्द कारीगर इस लकड़ी को अपने हुनर का माध्यम बनाते हैं। भावुक होकर आगे बात जारी रखते हैं कि लकड़ी सिर्फ बेजान वस्तु है जिसे मुर्दे को दफ़नाने के लिए कब्र पर भी ढँका जाता है और चिता जलाने के लिए भी इसका इस्तेमाल होता है। लेकिन, एक कलाकर अपने हुनर द्वारा इसमें ज़िन्दगी पैदा कर देता है यह होता है हुनर और कलात्मकता का जादू।

व्यवसायी हाजी नासिर के लिए उनके द्वारा बनाए गए सैम्पल भेजे जाने व पास होकर ऑर्डर मिलने की बात की तो उस्ताद असग़र का आक्रोश फूट पड़ा, कहा कि यह सब झूठ व फ़रेब की बुनियादों पर खड़ा हुआ महल है जो

हमारे यहाँ अब सामान्य बात हो गयी है। इसी खाता-खेडी से ही ऐसे निर्यातक व व्यवसायी हैं जिन्होंने उस्तादों के तैयार किए हुए उत्पाद सरकार को भेजे और राष्ट्रपति व अन्य सरकारी तमगे जीतकर अपने व्यवसाय को भी बढ़ाया और शान से सीना फुलाकर घूमते हैं। उन्होंने ऐसे सात लोगों के नाम गिनवाये जिनके लिए खुद उन्होंने कलाकृति तैयार की थी और व्यवसायी को एवार्ड मिला। आगे कहते हैं कि खुद हाजी नासिर ने भी इस साल एवार्ड के लिए मेरी तैयार की हुई कलाकृति भेजी है, लेकिन यह सब झूठ है। यह सब उनको पता है, जो ऐसा करते हैं। मैं ऐसा नहीं कर सकता, अभाव की जो ज़िन्दगी मैं जीता हूँ इन परिस्थितियों को मैने स्वीकार कर लिया है।

उस्ताद असग़र से उनके घर पर ही मेरी चर्चा हुई, शहर की सीमा पर स्थित एक निर्माणाधीन कालोनी में अँधेरे से घिरा हुआ एक छोटा सा घर, जिसकी दीवारों पर अभी प्लास्टर नहीं हुआ। पलँग पर मैले, फटे हुए कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। बातचीत के बीच में उनके दो जवान बेटे भी हमारे पास आकर बैठ गए। कच्चे फ़र्श पर रखे हुए एक पुराने से बॉक्स से निकालकर उनके बेटों ने मुझे वह एवार्ड दिखाया जो सन् 2008 में उस्ताद को मिला था। इसके अलावा और भी कई ऐसे पुरस्कार थे जो उस्ताद असग़र के हुनर की स्वीकार्यता के प्रमाण थे। लेकिन मेरे सामने तो खुद इन शाहकारों को तैयार करने वाला वह कलाकार था जिसे उसकी कला ने एक अभावग्रस्त जीवन के सिवा कुछ भी नहीं दिया था।

इस अध्ययन के लिए यह मेरा आख़िरी साक्षात्कार था, लेकिन मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका था कि इस कला जगत में सैकड़ों उस्ताद असग़र जैसे जीवन्त कलाकार हैं जो अपनी भूमिका अदा कर चुके और अपने आख़िरी पड़ाव पर हैं।

पारम्परिक कला से व्यवसाय में तब्दील होने का सफ़र

इस व्यवसाय से जुडे हुये लोगों ने 1990 में बदलते हुये वैश्विक परिदृश्य को पहली बार महसूस किया और अपने अन्दर बदलाव शुरू कर दिये, और अपने आपको परिस्थितियों के साथ ढालना शुरू कर दिया। ये एक नया मोड़ था कला का व्यवसाय में तब्दील होने का।

सन् 1990 के बाद उदारीकरण की नीतियों के चलते खुली बाज़ार व्यवस्था, आर्थिक वैश्वीकरण और औद्योगीकरण के बाद इस कला का व्यवसायीकरण होना शुरू हुआ। निर्यात बढ़ने के साथ-साथ क्राफ्ट बाज़ार आयोजित होने लगे तो घरेलू बाज़ार भी मिला, यह भी एक बड़ा बाज़ार था। विशेष तौर पर फर्नीचर का बाज़ार, जिससे इस उद्योग में आर्थिक सम्पन्नता ने जन्म लिया। इसके नतीजतन तीन-चार तरह के वर्ग बन गए। एक बड़ी पूँजी वाले पूंजीपति व निर्यातक जिन्होंने उद्योग में सरमायादारी कर दी और पूंजी पैदा की। दूसरे, हाजी नासिर जैसे शुद्ध व्यवसायी जिन्होंने अपनी पारिवारिक दस्तकार पृष्ठभूमि के चलते अपनी मेहनत व व्यवसायिक दृष्टि द्वारा पहले मज़दूरों की तरह मेहनत की और धीरे-धीरे प्रगति करते हुए बडे कारख़ानेदार, मैन्यूफैक्चर, सप्लायर, निर्यातक का सफ़र तय किया। इनसे इतर उस्ताद हाजी अली जैसे लोग हैं, जिन्होंने अपनी कला के साथ-साथ बदलती परिस्थितियों

को परखा और उनके साथ ताल-मेल बैठाया और इस तरह कला के साथ-साथ अपना व्यवसायीकरण कर लिया। इसलिए आज टिके रह गए और वर्तमान में कला को भी तरजीह देते हैं और एक सफल व्यवसायी भी हैं। ऐसे लोग गिनती में कम ही हैं।

अन्त में एक वर्ग उस्ताद असग़र जैसे कलाकारों का था। इस वर्ग के इन उस्तादों का कला के प्रति भावनात्मक लगाव बना रहा। यह वह भावुक लोग थे, जिन्होंने कला के व्यवसायीकरण को हीन समझकर इस बदलाव से समझौते को स्वीकार नहीं किया। यह समय काल ऐसे कला प्रेमियों के लिए कयामत का दौर साबित हुआ। ऐसे में इस तरह के फनकार या तो व्यवसाय से धकेल दिए गए और या फिर वह उस्ताद शकूर की तरह कोयला बेचने के लिए मजबूर हो गए या फिर परिस्थितियों के साथ संघर्ष करते हुये उस्ताद असग़र की तरह हाजी नासिर जैसे व्यवसायियों के ख़िदमतगार बनकर सेवा करने पर मजबूर हैं।

अध्ययन के पहले अध्याय 'तज़करा' में उस्ताद मो. शकूर का जिक्र आया है कि यह अध्ययन उस्ताद शकूर का ज़िन्दगीनामा भी लग सकता है। उस्ताद असग़र के हालत जानकर मुझे तो ऐसा ही लगा। 2007 में उस्ताद शकूर कोयले बेचने या उस्ताद असग़र को अपने सामने पले-बढे व्यवसायी नासिर की ख़िदमत करनी पड़े, बात तो एक ही है क्या फर्क पड़ता है?

खुलासा

विश्व में हिन्दुस्तानी समाज की पहचान एक कला प्रधान देश के रूप में मानी जाती है। भारतीय समाज ऐसा समाज है कला ही जिसके जन-जीवन की धरोहर है और जीवन शैली भी। हमारे देश के अलग-अलग राज्यों की पहचान उनकी विशेष कलाओं से जुड़ी हुई है। कश्मीर का नाम आते ही इस अखरोट की लकड़ी पर नक़्क़ाशी का हुनर और पशमीना शॉल पर हाथ से बने बेल बूटे नज़रों के सामने आने लगते हैं। तो आन्ध्र और तेलंगाना राज्यों का दामन मोतियों से भरा हुआ है, जहाँ मोतियों से तैयार अनेक प्रकार के आभूषण तैयार होते हैं। असम की पहचान बेम्बू से बने फर्नीचर से है तो वहीं सूरत में हीरों का हुनर जगमगाता हुआ नज़र आता है।

उत्तर प्रदेश के तो अलग-अलग ज़िले व शहरों की पहचान ही उनके पुश्तैनी हुनर के हवाले से होती है। मुरादाबाद का नाम पीतल के हुनर की वजह से 'पीतल नगरी' तो लखनऊ अपनी तहज़ीब व मलमल की कुर्ती पर चिकन वर्क से अपनी पहचान रखता है। चूडियों के लिए फीरोज़ाबाद है और कन्नौज अपने इत्र की खुशबू बिखेरता हुआ नज़र आता है। चमड़े की बनी हुई कोई भी कलाकृति देखते ही आँखों के सामने कानपुर आने लगता है। उम्दा क़िस्म की साड़ी चाहिए तो बनारस शहर की याद आ जाती है। कालीन चाहिये तो हम मिर्ज़ापुर और कश्मीर की वादियों में पहुँच जाते हैं। बरेली शहर की डोर और पतंग आसमान पर उड़ती नजर आती है तो बरेली का सूरमा भी बरेली की याद

दिलाता है। लिखते जाइये तो हर शहर अपनी कलात्मक पहचान के साथ आपके सामने आ खड़ा होता है।

उत्तर प्रदेश में सहारनपुर नगर अपनी सूफी, भक्ति परम्परा के कारण प्रसिद्ध है और साम्प्रदायिक एकता की पहचान की मिसाल माना जाता है। विश्व स्तर पर सहारनपुर की पहचान लकड़ी पर हाथ से होने वाली सदियों पुरानी दस्तकारी से है। ये शहर दुनियाभर में वुडन सिटी के रूप में पहचाना जाता है, जैसे मुरादाबाद पीतल नगरी के नाम से प्रसिद्ध है। लकड़ी पर होने वाले इस हुनर ने इस शहर में एक तहज़ीब का निर्माण किया है। उस्ताद व शागिर्दी की परम्परा ने मोहब्बत और समर्पण के ऐसे रिश्ते को जन्म दिया जिसके सामने ना धर्म की खाई थी और ना जाति की दीवारें।

कलाएँ धार्मिक मान्यताओं के पार कैसे अपना सफ़र जारी रखती हैं इसके कई उदाहरण इस अध्ययन के दौरान सामने आये हैं। उदाहरण के लिए बुत बनाना व तस्वीर कशी इस्लाम धर्म में पूरी तरह से निषेध है और हराम मानी जाती है। मान्यता यहाँ तक है कि बुत बनाने व तस्वीर बनाने वाले का मरने के बाद कोई ठिकाना है तो वह जहन्नुम है। उस्ताद हाजी मोहम्मद अली एक धार्मिक मान्यताओं वाले इन्सान हैं। इस्लामी मान्यताओं एवं शरीयत के अनुसार जिन्दगी बसर करने वाले, 5 वक्त की नमाज़ी, दाढ़ी टोपी धारण करने वाले, हज यात्रा कर चुके एक साधारण इंसान हैं। मैंने चर्चा के दौरान जब उनसे उनके द्वारा बनायी गयी कलाकृति पर सवाल किया कि आपने एक धार्मिक आदमी होते हुये यह तस्वीर बनायी यह तो धार्मिक मान्यताओं के अनुसार एक गुनाह का काम है। मेरे सवाल के जवाब पर उस्ताद मोहम्मद अली का जवाब था कि बेशक गुनाह है। फिर मुस्कुराते हुये उन्होंने इस्लामी शरीयत के अनुसार गुनाहों की व्याख्या करते हुये बताया कि सबसे बड़ा पाप किसी भी व्यक्ति के साथ धोखा करना, किसी के दिल को ठेस पहुँचाना व किसी भी व्यक्ति के साथ विश्वासघात करना होता है और यह सब मैंने आज तक किसी के साथ किया नहीं और कलाकृति बनाने का जो गुनाह है उसका सीधा सम्बन्ध खुदा के साथ है। फिर यह मामला मेरे और खुदा के बीच का है और अल्लाह का फ़रमान है कि उसके साथ किये गए पहाड़ जैसे गुनाह को भी वह माफ़ कर देगा और यह मामला सीधा मेरे और खुदा के बीच है, तो मेरा यकीन है कि वो मुझे इस

गुनाह के लिए माफ़ कर देगा। लेकिन थोड़ा रूककर यह कहने से भी वह नहीं चूकते कि कलाकार का धर्म तो उसकी कला ही है और जब मैं कोई शाहकार बनाता हूँ तो उस समय मैं केवल एक कलाकार ही होता हूँ। मैं किस धर्म का अनुयायी हूँ मुझे यह याद ही नहीं रहता।

धार्मिक, जातीय यहाँ तक की सामाजिक असमानताओं को पार करने वाली दोस्ती की एक दास्तान उस्ताद असग़र की थी। साक्षात्कार में उस्ताद असग़र बीच-बीच में बार-बार मिगलानी से अपने रिश्तों का जिक्र करते रहे। शहर के बडे लकड़ी व्यवसायी मिगलानी जी से उनकी मुलाक़ात एक कलाकृति बनाने के माध्यम से हुयी। तो मिगलानी साहब उनकी कला के ऐसे प्रशंसक हुये कि यह रिश्ता एक मज़दूर दस्तकार और एक बड़े व्यवसायी के रिश्ते से बदलकर एक भरोसेमन्द दोस्त के रिश्ते में तब्दील हो गया। उस्ताद असग़र उन सब मुलाक़ातों का जिक्र करते हुये भावुक व रोमांचित होते थे जब वह बताते थे कि किस तरह मिगलानी साहब अपने पारिवारिक मामलों तक की हिस्सेदारी उनसे करते थे। उनकी बात का सार इतना ही था कि मिगलानी साहब और उनके बीच का रिश्ता एक हुनरमंद और हुनर की क़द्र करने वाले इन्सान का बन गया था।

शहर के मशहूर व सम्मानित शायर हैरत रज़्ज़ाकी मुझे आज भी याद हैं। जीवनभर अविवाहित ज़िन्दगी गुजर बसर करने वाले हैरत रज़्ज़ाकी लकड़ी के माहिर दस्तकार थे और लकड़ी के मन्दिर बनाया करते थे। आज से 25-30 साल पहले का माहौल आज से कहीं ज्यादा धार्मिक कट्टरता का था, उनके आस-पास के लोग उन्हें मन्दिर बनाने से मना करते थे और कहते थे कि ये गुनाह है। इसके लिए वह उनको फ़तवे (धार्मिक फरमान) लिखवाकर दिखाते थे कि यह गुनाह है। हैरत रज़्ज़ाकी सबकी सुनते रहे लेकिन ज़िन्दगीभर वह अपने काम में लगे रहे। अपनी इन मान्यताओं के साथ कि कलाकार का धर्म उसकी कला है। उनका कहना था कि हमारी कलाएँ हमारी धार्मिक परम्पराओं व मान्यताओं से परे हैं। यह हमारी मिली जुली तहज़ीब का हिस्सा है और हमारी साझी विरासत है। उनकी मान्यता थी कि इस शहर की कला ने शहर को एक विरासत से मालामाल किया है और यह हमारी साझी विरासत है। कलाएँ हमारे जीवन को रंग-बिरंगा बनाती हैं और सामाजिक जीवन को इन्द्रधनुष की तरह सतरंगा बना देती हैं।

यह तथ्य है कि वर्तमान में इस नगर की पहचान लकड़ी पर नक्काशी करने के हुनर से ही है। हालाँकि इन मान्यताओं में आज भारी फेर-बदल हुआ है। उस्ताग शागिर्द की वह पुरानी आत्मीयता से भरपूर रवायत का रिश्ता नहीं रहा है जोकि हुआ करता था। यह रिश्ता आज व्यवसायिक रिश्ते में बदल चुका है और उस्ताद शागिर्द दोनों इस व्यवहारिक सच्चाई से अवगत हैं कि यह एक व्यवसायिक रिश्ता है। संस्कारों में भारी परिवर्तन हो चुका है। पहले जैसा माहौल नहीं है आज यह कला एक फलते-फूलते व्यवसाय में बदल चुकी है। लेकिन यात्रा जारी है...

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 091-011-26177904, टेलीफैक्स : 091-011-26177904

ई-मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com

वेबसाइट : www.isd.net.in